# इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष ८ अंक २ आषाढ़ मास कलियुगाब्द ५११७ जुलाई २०१५

**मार्गदर्शक :**
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

**सम्पादक :**
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

**सह सम्पादक**
चेतराम गर्ग

**सम्पादक मण्डल :**
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ० ओम प्रकाश शर्मा

**टंकण एवं सज्जा :**
अश्वनी कालिया

**सम्पादकीय कार्यालय :**
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव—नेरी, डाकघर—खगल
जिला—हमीरपुर—१७७००१ (हि०प्र०)
दूरभाष : ०१९७२—२०३०४४

**मूल्य:**
प्रति अंक —१५.०० रुपये
वार्षिक — ६०.०० रुपय
itihasdivakar@yahoo.com
chetramneri@gmail.com

## अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

संवीक्षण

| | | |
|---|---|---|
| संजीवनी विद्या | बाबा साहेब आपटे | ३ |
| भारतीय संस्कृति में अवतार का यथार्थ | डॉ. प्रशान्त गौरव | १२ |
| Science in Ancient Indian Scriptures :Bhumi Sukt (Atharv Ved) and Heat inside Earth | Bhag Chand Chauhan | २१ |

दिव्य विभूति

| | | |
|---|---|---|
| तुलसी जय तुम्हारी | डॉ. परितोष बैलगो | २६ |

कृषि दर्शन

| | | |
|---|---|---|
| प्राचीन जन और कृषि तन्त्र | डॉ. रामविलास शर्मा | ३५ |

शेष–अशेष

| | | |
|---|---|---|
| एक महान कर्मयोगी | श्रीगुरुपद भौमिक | ४६ |

# सम्पादकीय

## संस्कृत भाषा में प्रशस्त आलोक

संस्कृत भाषा विश्व की समृद्धतम भाषा है जिसमें भारतवर्ष की ऋषि परम्परा का प्रशस्त आलोक, विश्व समाज के कल्याण पथ की अक्षय ज्ञाननिधि के रूप में विद्यमान है। संस्कृत भाषा में रचित साहित्य में जहां अध्यात्म के उच्चतम शिखर का स्पर्श है, वहां इसके विपुल साहित्य में ज्ञान–विज्ञान का सर्वांगीण विवेचन सुलभ है।

भारतवर्ष की इस गौरवशाली भाषायी धरोहर के सम्मान में प्रतिवर्ष श्रावणी पूर्णिमा को रक्षा बन्धन के पावन दिवस के अवसर पर संस्कृत दिवस का राष्ट्रीय स्तर पर आयोजन होता है। इस वर्ष संस्कृत दिवस कलियुगाब्द ५११७ की श्रावणी पूर्णिमा के अनुसार भाद्रपद सौर मास की प्रविष्टे १३, विक्रमी संवत् २०७२ एवं २६ अगस्त, २०१५ को है।

सर्वांगीण ज्ञानपूर्ण संस्कृत भाषा की महिमा का न केवल भारत के महापुरुषों ने गुणगान किया है, बल्कि अनेक विदेशी विद्वानों ने भी संस्कृत भाषा के वैश्विक महत्त्व को स्वीकार किया है। भारतीय मनीषा ने संस्कृत को ही संस्कृति का अधिष्ठान मानते हुए कहा है– **संस्कृतिः संस्कृताश्रिता।** जब लार्ड मैकाले ने भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के मूलोच्छेदन के प्रयास में संस्कृत महाविद्यालय कोलकाता को बन्द करने का निर्णय लिया तो इस महाविद्यालय के प्रधानाचार्य संस्कृतवेत्ता विदेशी विद्वान् एच.एच.विल्सन ने इस निर्णय से असहमति व्यक्त करते हुए एक श्लोक के द्वारा संस्कृत के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा कि जब तक भारतवर्ष है, जब तक हिमाचल और विंध्य पर्वत हैं, जब तक गंगा और गोदावरी नदियां है, तब तक यहां संस्कृत रहेगी –

**यावत् भारतवर्षं स्यात् यावत् विन्ध्याहिमाचलौ।**
**यावत् गंगा च गोदा च तावत् एव हि संस्कृतम्।।**

अनेक पाश्चात्य विद्वान् और उनके रंग में रंगे भारतीय विद्वान् संस्कृत की महिमा के छिद्रान्वेषण में अधिक रुचि रखते हैं। सामान्यतः साम्यवादी (कम्युनिस्ट) विचारक इस कोटि में रखे जाते हैं, परन्तु ऐसा मानना पूर्ण सत्य नहीं है। जिन विद्वानो ने संस्कृत साहित्य का पूर्वाग्रह मुक्त हो कर गहन अध्ययन किया है, वे किसी भी विचारधारा के हों, उन्होंने संस्कृत साहित्य मनीषियों की उपलब्धियों का गुणग्राह्य भाव से प्रतिपादन किया है। **ऐसे ही साम्यवादी विचारधारा के एक विशिष्ट विद्वान् हैं – डॉ. रामविलास शर्मा।** उन्होंने संस्कृत साहित्य के भीतर साम्यवाद के दर्शन पाए और संस्कृत साहित्य की उपलब्धियों को लेखनीबद्ध करके राष्ट्रीय स्वाभिमान को गर्वोन्नत किया।

डॉ. रामविलास शर्मा के गूढ़ भारतीय चिन्तन को नमन करते हुए इस अंक में **कृषि दर्शन** के अन्तर्गत उनका गवेषणापूर्ण लेख **भारतीय जन और कृषि तन्त्र** सम्मिलित है।

विनीत,

डॉ. विद्या चन्द ठाकुर,

# संजीवनी विद्या

**बाबा साहेब आपटे**

पौराणिक ग्रन्थों में संजीवनी विद्या का उल्लेख बार-बार किया गया है। राक्षसों के गुरु शुक्राचार्य को यह विद्या प्राप्त थी। देवों एवं राक्षसों के युद्ध में जब-जब राक्षस मारे जाते, तब-तब उनके ये गुरु अपनी संजीवनी विद्या की सामर्थ्य से उन्हें फिर जीवित कर देते थे। यह संजीवनी विद्या देवपक्ष की ओर से किसी को भी ज्ञात नहीं थी। अतः उसे हस्तगत करने के लिए देवगुरु बृहस्पति का पुत्र कच, शुक्राचार्य के पास किस प्रकार गया और वहां रहकर भी शुक्रकन्या देवयानी के प्रेमपाश में न फंसते हुए उसने अपना हेतु किस प्रकार सिद्ध किया, यह वृत्तान्त महाभारत में अत्यन्त सुन्दर एवं विस्तृत ढंग से वर्णित है। इस कथा से अपने देश के आबाल-वृद्ध इतने अधिक परिचित हैं कि आज भी जब कोई युवक यूरोप-अमेरिका में विद्यार्जन के लिए जाता है तो वह किसी प्रकार से मोहजाल में न फंसकर अपना स्वाभिमान और संस्कृति कायम रखकर स्वदेश वापस आ जाए; इस दृष्टि से उसे प्राचीनकाल के कच की उपमा देकर, उसका गौरव करके, उसे उसके कर्त्तव्य का बोध कराया जाता है।

परन्तु जिस विद्या को सम्पादित करने के लिए कच को इतनी लोकोत्तर कीर्ति प्राप्त हुई, उस संजीवनी विद्या के समग्र विस्तृत वर्णन की तो बात ही क्या, उसके अंशमात्र का किंचित् वर्णन भी पुराणों में या अन्य किसी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं है। एक शुक्राचार्य के अतिरिक्त अन्य किसी के द्वारा इस विद्या का प्रयोग किये जाने का उल्लेख तक भी नहीं मिलता। तो क्या अन्य अनेक विद्याओं के समान ही यह संजीवनी विद्या भी सदा सर्वदा के लिए विनष्ट हो गई?

**संजीवनी का स्वरूप**

इस संजीवनी विद्या के स्वरूप के सम्बन्ध में इन दिनों कई विचित्र कल्पनाएं प्रकट की गई हैं। कुछ लोग कहते हैं कि यह जड़ी-बूटी जैसी ही कोई वस्तु होगी। कई लोग कहते हैं कि यह एक मन्त्र है। यह स्पष्ट है कि उनका यह मत महाभारत के वर्णन पर आधारित है। कई लोगों ने यह भी तर्क प्रस्तुत किया है कि संजीवनी एक विशिष्ट राजपद्धति का नाम था एवं राक्षसों के बीच शुक्राचार्य ने यह पद्धति प्रारम्भ की थी और उसमें भी वर्तमान लोकसत्तात्मक राज्यपद्धति के अनुसार ही व्यवस्था थी। तो कुछ लोगों का तर्क है कि औषधि, मन्त्र एवं विद्युत प्रयोग के सम्मिश्रण से बनी एक प्रक्रिया ही संजीवनी है।

परन्तु संजीवनी कोई जड़-मूल या किसी पेड़-पत्ती की औषधि होगी, यह असम्भव ही लगता है। क्योंकि प्रथम बार तो कच के शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके लकड़बग्घों को खिला दिए गए थे, दूसरी बार उसकी मृत देह जलाकर उसकी राख समुद्र में फेंक दी गई थी और तीसरी बार तो उस राख को

मद्य में मिलाकर उसे स्वयं शुक्राचार्य को ही प्राशन करने को दे दिया गया था। अब संजीवनी को यदि एक मन्त्र माने तो शुक्राचार्य ने वह मन्त्र कच को जब दिया, उस समय उसकी परम्परा भी बताई गई हो, ऐसा उल्लेख कहीं भी दिखाई नहीं देता। ऐसा क्यों? फिर वह प्रभावशाली मन्त्र नष्ट न हो, ऐसी कोई व्यवस्था आचार्यों ने क्यों नहीं की? तीसरा तर्क यह है कि संजीवनी राज्यपद्धति का ही एक प्रकार था, परन्तु कच की कहानी के सन्दर्भ से यह तर्क मेल नहीं खाता और औषधि, मन्त्र एवं विद्युत प्रयोग के सम्मिश्रण की प्रक्रिया अर्थात् संजीवनी, यह तो कल्पना की मात्र एक उड़ान-सी लगती है। इस प्रकार जितना अधिक विचार करते जाएं उतना ही संजीवनी विद्या के स्वरूप का रहस्य गहरा होता जाता है और फिर इस विषय पर चुप्पी साध लेनी पड़ती है। पुराण, रामायण, महाभारत आदि धर्मग्रन्थों का एक-एक अक्षर सत्य है– यह लौकिक एवं परलौकिक दोनों ही दृष्टियों से सत्य है, ऐसा मानने वालों की संख्या भारतवर्ष में आज भी बहुत बड़ी है। फिर भी जिनके मन में अब तक इस प्रकार की श्रद्धा स्थिर नहीं हुई है तथा कार्य-कारणभाव योग्यायोग्यता के विचार के आधार पर ही प्रत्येक बात की सत्यासत्यता निर्णीत करने की जिनकी इच्छा रहती है, ऐसे लोगों का तो समाधान होना ही चाहिए।

**जीवन और मृत्यु**

संजीवनी विद्या का स्वरूप ठीक से ध्यान में आने के लिए प्रथम एक बात अच्छी तरह से समझ लेना आवश्यक है कि जीवन या मृत्यु के सम्बन्ध में तत्कालीन लोगों की धारणा क्या थी? 'मात्र अन्नक्षय करते हुए पालित पोषित शरीर अर्थात् जीवन या जीवितावस्था' एवं 'शरीर नष्ट होने पर वह मृत्यु है'– यह कल्पना उन दिनों प्रचलित नहीं थी। उन दिनों पूज्य व्यक्तियों का अपमान करना उन व्यक्तियों के वध के समान ही माना जाता था। सज्जन पुरुष यदि स्वयं ही अपनी स्तुति करें तो वह आत्मवध कहलाता था। ये कल्पनाएं अपने धर्म-ग्रन्थों में कई स्थानों पर मिलती हैं। अमरकोश में वध करना या मार डालना इसके पर्यायवाचक जो अनेक शब्द दिए गए हैं, उनमें से तीन शब्दों का विचार यहां आवश्यक हैं। ये शब्द हैं– प्रवासन, निर्वासन तथा परिवर्जन। दीर्घकाल तक स्वकीयों से दूर रहना अर्थात् प्रवासन, सीमा पार किया जाना यानि निर्वासन एवं जो कार्य करने की अपनी पात्रता हो उस काम के करने पर प्रतिबन्ध का अर्थ है परिवर्जन। किसी शूरवीर सिपाही को युद्धक्षेत्र में जाने से वंचित कर घर बैठने के लिए बाध्य करना या किसी विद्वान पण्डित को विद्वत्सभा में भाग लेने से रोकने को भी परिवर्जन की संज्ञा दी गई है। इन तीनों प्रकारों में कारण रूप से अवहेलना या तिरस्कार की भावना है, अतः इन शब्दों को वध का पर्यायवाची माना गया। इसमें शरीरनाश का कुछ भी संबन्ध नहीं है। गुणहीन पुत्र की माता स्वयं अपने आपको पुत्रवती नहीं, बांझ समझे; इस कल्पना के पीछे भी 'कीर्तिर्यस्य स जीवति' की ही धारणा थी। तात्पर्य यह कि उत्साहमय, सद्‌गुण सम्पन्न और इस कारण गौरवास्पद जीवन जीना ही जीवित होने का लक्षण माना जाता रहा तथा निराशा से युक्त, अकर्मण्य और अपमानजनक जीवन को ही मृत्यु के समान समझा जाता रहा। यही तत्कालीन

निश्चित धारणा थी।

आज भी इस धारणा में कोई अन्तर नहीं हुआ है। जिसका शरीर श्वसनक्षम है एवं नित्यप्रति जो अन्नक्षय करता है, परन्तु जिसमें आशा, कर्तृत्व या तेजस्विता का नामोनिशान न हो, ऐसे पुरुष को आज भी मृतवत् ही माना जाता है। व्यक्ति के सम्बन्ध में विचार करने पर इस धारणा का लाक्षणिक अर्थ ही अपने मन में मुख्यतः रहता है। परन्तु समाज के सम्बन्ध में विचार करते समय जब हम इसी कसौटी पर उसे कसते हैं तब उस धारणा का लाक्षणिक अर्थ लगाने की आवश्यकता का भी हमें अनुभव नहीं होता। समाज-शरीर के विनाश की कल्पना भी असम्भव-सी होने के कारण स्वाभिमानी, आशायुक्त और तेजस्वी समाज हो तो वह जीवित एवं उक्त गुणों से हीन समाज सर्वत्र मृत माना जाता है।

**आत्मज्ञान ही संजीवनी**

इस प्रकार से जो समाज मृत है उसको गत-वैभव का स्मरण कराकर उसमें कर्तृत्व, साहस आदि सुप्त गुण जागृत करने से वह पुनः जीवित समाज कहला सकता है। यह बात इतिहास के पाठकों को अज्ञात नहीं है।

शुक्राचार्य द्वारा जिन स्थानों पर संजीवनी विद्या का प्रयोग किये जाने सम्बन्धी वर्णन पुराणों में है, उनमें से एक कच का अपवाद छोड़कर, प्रत्येक बार उस विद्या का प्रयोग उन्होंने सामुदायिक रीति से किया है। कोई राक्षस नैसर्गिक रूप से मृत हुआ हो या दुर्घटना से या फिर आपस के लड़ाई-झगड़े में ही, उसे संजीवनी की सहायता से शुक्राचार्य द्वारा जीवित कर दिया गया हो, ऐसा एक भी उल्लेख पुराणों में प्राप्त नहीं है। यह बात ध्यान में रखें तो संजीवनी विद्या के सम्बन्ध में शंका करने का कारण ही शेष नहीं रहता।

परन्तु किसी समाज के स्वाभिमान को जगाकर उसमें पराक्रमयुक्त तेजस्वी जीवन जीने का साहस उत्पन्न करना हो एवं उसे संजीवित करना हो तो इसके लिए आवश्यक है कि उस समाज का भूतकाल भी वैभवशाली और स्वाभिमानपूर्ण रहा हो। जिन पर शुक्राचार्य संजीवनी विद्या का प्रयोग करते थे, वे राक्षस इस दृष्टि से भी सर्वथा योग्य ही थे। उस समय का उपलब्ध उनका भूतकालीन इतिहास पराक्रम एवं कर्तृत्व से परिपूर्ण था। पुराणों में वर्णन मिलता है कि वे बड़े निर्भय, अत्यन्त प्रयत्नवादी तथा स्वाभिमानी थे। प्रारम्भ में पृथ्वी पर उन्हीं का शासन था। पश्चात् देवों ने उसमें हिस्सा मांगा। अतः सुर-असुरों के युद्ध हुए। पुराणों की इस उक्ति की पुष्टि वर्तमान शास्त्रों द्वारा भी की गई है। भूगर्भशास्त्रियों के अनुसार आज जहां आर्यावर्त का उपजाऊ एवं मैदानी क्षेत्र है, वहां प्राचीनकाल में समुद्र था और दक्षिण का पठार अफ्रीका की ओर फैल गया। इस कारण भारत नाम का एक नवीन महादेश प्रकट हुआ। हिमालय की ढलान पर रहने वाले लोगों ने दक्षिण के कृष्णवर्ण लोगों को पराभूत कर सम्पूर्ण देश पर अपना प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। परन्तु वे बहुसंख्यक थे तथा दक्षिण के पठारी प्रदेश में ही उनका राज्य था, अतः इस देश पर का प्रभुत्व आसानी एवं सरलता से

भूल जाना उनके लिए कैसे सम्भव होता? उन्हें अपने वैभवशाली भूतकाल की ओर देखकर स्फूर्ति प्राप्त होती रहती है, इसकी कल्पना देवों को पहले नहीं हो सकी। इस कारण एक बार पराभूत होकर भी वे अपनी सेना में नए लोग भर्ती कर दुगुने उत्साह से इतने शीघ्र कैसे तैयार हो जाते हैं, इस पर उन्हें बड़ा आश्चर्य होता था। इसको वे संजीवनी विद्या का प्रभाव मानते थे।

इस रीति से अनेक वर्ष बीत गए तथा देवों, मानवों एवं राक्षसों ने भारतवर्ष को अपने मानबिन्दु का केन्द्र मानना प्रारम्भ किया। इस कारण स्वाभाविक ही राक्षसों की गणना उनके श्रेष्ठ गुणों के कारण, देवयोनि में की जाने लगी और संजीवनी विद्या का प्रयोग अनावश्यक हो जाने के कारण बन्द हो गया।

संजीवनी विद्या का जो लाक्षणिक अर्थ ऊपर की पंक्तियों में बताया गया है और साथ ही जिस प्रकार उसका ऐतिहासिक सम्बन्ध भी स्पष्ट किया गया है; उसी प्रकार इसी सन्दर्भ में कच-कथा का भी स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। अतः अब हम इसका विचार करें।

**कच की कथा का लाक्षणिक अर्थ**

शुक्राचार्य से संजीवनी विद्या हस्तगत कर लेने के उद्देश्य से जब कच घर छोड़कर निकला तो देवों ने उसे गुप्त संकेत दिया कि शुक्राचार्य की कन्या देवयानी को प्रसन्न कर लेने से तुम्हारा काम बनेगा। कच ने यह बात ध्यान में रखी और वह शुक्राचार्य के घर पहुंच गया। उन्होंने उसे शिष्य के रूप में रख लिया। शिष्य के नाते कच ने गुरु-सेवा व्रत का निष्ठापूर्वक पालन प्रारम्भ किया। मधुर, मितभाषी, सेवापरायण होने के कारण वह शुक्राचार्य का स्नेह-पात्र बन गया। परन्तु देवयानी पर उसकी छाप उसके व्यसनहीन होने के कारण ही पड़ी। देवयानी की माता उसके बचपन में ही चल बसी थी। कच ने उस घर में रहना प्रारम्भ किया तो एक समान आयु के मित्र-लाभ से उसे आनन्द हुआ और कच को वह मनःपूर्वक चाहने लगी। कुछ दिन बीते तब कच के ध्यान में आया कि संजीवनी विद्या के सम्बन्ध में तो राक्षस कुछ बात तक नहीं करते। सम्भवतः वे इस बात को छिपाना चाहते हैं। ऐसा विचार कर राक्षसों का विश्वास सम्पादन करने हेतु वह उनके साथ अधिक घुलमिल कर रहने लगा। उसके साथ उसने मद्यपान भी प्रारम्भ कर दिया। वह मानो उन्हीं का हो गया। ''मैं स्वर्गलोक का वासी हूं, कुछ विशेष उद्देश्य मन में रखकर यहां आया हूं,'' इसका भी मानो उसे पूर्ण विस्मरण हो गया। इस प्रकार से यह उसकी मृत्यु ही थी। मद्य की एक बूंद का भी स्पर्श न करने वाले इस विप्रकुमार द्वारा इतने थोड़े समय में ही, प्रत्येक बैठक में, जलसे में एक के बाद एक मद्य के चषक रिक्त करते जाने का उस प्राचीनकाल में मृत्यु के अतिरिक्त और कोई अर्थ हो ही नहीं सकता था। इस कारण राक्षसगण मन-ही-मन अत्यधिक प्रसन्न थे। वे ऐसा सोचने लगे कि इस घटना से तो देवगुरु बृहस्पति की नाक ही कट गई।

**प्रथम संजीवन**

परन्तु देवयानी पर कच के इस व्यवहार का विपरीत परिणाम हुआ। मन ही मन वह कच को

भावी पति के रूप में वरण कर चुकी थी। फिर व्यसनहीन कच का एक मद्यपी में रूपान्तर हो जाना उसे कैसे रुचता। उसने स्वयं उसे सावधान करने का प्रयास किया। परन्तु अपने नए मित्रों की बैठकों में कच बिल्कुल ही रंग गया था। अन्त में देवयानी ने यह बात आचार्य से कही। देवगुरु बृहस्पति के पुत्र को आचार्य ने स्वयं अपने घर शिष्य के रूप में रख लिया, लेकिन उसने इस प्रकार आचरण प्रारम्भ कर दिया कि यह आचार्य को भी कदापि पसन्द नहीं था। उन्होंने कच को अपने पास बुलाया और उसकी प्रताड़ना की। कच ने भी विचार किया कि सचमुच ही मद्यपान का अन्त में भीषण परिणाम होगा। साथ ही उसके मन में यह विचार आया कि राक्षसों के साथ इतनी मित्रता करके एकरूप हो जाने पर भी अपना उद्देश्य साध्य होने की दृष्टि से तिल मात्र भी लाभ नहीं हुआ। इस विचार से वह भी सावधान हो गया। वह पुनश्च व्यवहार करने वाला निर्व्यसनी कच बन गया। राक्षसों का गप मारने का एक-एक अड्डा मानो एक-एक लोमड़ी। इन अड्डों से कच एकरूप हो चुका था। अतः आचार्य द्वारा प्रताड़ना प्राप्त होने पर जैसे वह इन लोमड़ियों के पेट फाड़कर ही बाहर आ गया हो।

यद्यपि कच ने इस प्रकार से मद्यपान से छुट्टी पा ली तथापि उसके राक्षस मित्र उसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। कच उनका साथ छोड़ने जा रहा है, यह ध्यान में आते ही उन्होंने उल्टे उसे कोसना और उसकी निन्दा करना तथा मजाक उड़ाना प्रारम्भ कर दिया। वे कहने लगे कि विप्रकुमार होकर भी मद्यपान करने के कारण अब वह भ्रष्ट हो गया है, उसका जीना अब व्यर्थ है और वह कायर है, उसे प्राणों का मोह हो गया है आदि। कुछ राक्षस कहने लगे कि वह देवयानी पर मुग्ध हो गया है, इसी से ऐसी उल्टी-सीधी बातें कर रहा है। एक राक्षस ने तो उसे उसके मुंह पर स्पष्ट शब्दों में कह डाला कि जिस शुक्राचार्य को तू इतना पूज्य मानता है, वे एक दिन भी मद्य के बिना रह नहीं सकते। अतः एक प्रकार से तुम्हारा मद्यपान-त्याग गुरुनिन्दा या गुरुद्रोह के समान ही है।

इस प्रकार के कटु वचन बार-बार सुनकर कच चिन्ताग्रस्त हो गया। उसकी हिम्मत पस्त हो गई। संजीवनी विद्या की प्राप्ति के सम्बन्ध में उसके मन में सन्देह उत्पन्न हो गया। वह सोचने लगा के अपयश एवं अपकीर्ति लेकर देवलोक में वापस जाने से क्या लाभ? ऐसी अशान्त मनःस्थिति में समुद्र के किनारे वह अपना अधिकांश समय बिताने लगा। इसका परिणाम उसके शरीर पर होना स्वाभाविक था। मानो मृत्यु ने ही उसे ग्रसित कर डाला है। इस प्रकार उसकी मुद्रा फीकी पड़ गई। खाने-पीने में भी उसका मन नहीं लगता था। इसी स्थिति में कुछ दिन बीत जायें तो मनःताप की पीड़ा से ग्रस्त होकर कच किसी दिन स्वयं ही समुद्र में कूदकर प्राणत्याग कर देगा, यह सोचकर राक्षस बहुत ही प्रसन्न हुए।

**द्वितीय संजीवनी**

परन्तु, देवयानी पर इसका बिल्कुल ही विपरीत परिणाम हुआ। कच की यह अवस्था देखकर वह चिन्तित हो गई। शुक्राचार्य के पास जाकर उसने कच की स्थिति से उन्हें पुनः अवगत कराया। देवयानी के मन का भाव आचार्य समझ चुके थे। परन्तु वैसा कुछ प्रकट न करते हुए उन्होने कच को फिर अपने पास बुलाया और कर्माकर्म मीमांसा का स्पष्ट विवेचन कर अन्त में उससे कहा कि हाथ में

लिया सत्कार्य कभी न छोड़ना और कभी निराश न होना, यही वास्तविक पुरुषार्थ का लक्षण है।

उनके इस आश्वासन एवं उपदेश का कच पर योग्य और अपेक्षित परिणाम हुआ। उसमें फिर उत्साह का संचार हो गया। नैराश्य रूपी समुद्र में डूबा हुआ कच फिर होश में आ गया। मानों उसका जीवन उसे पुनः प्राप्त हो गया। देवयानी के कारण ही उसका यह दूसरी बार पुनर्जन्म हुआ।

**उदर-प्रवेश**

उसके पश्चात् कच ने अपना सम्पूर्ण समय शुक्राचार्य के सानिध्य में ही बिताना प्रारम्भ किया। अब तो आचार्य का मद्यपान उसकी नजर से कैसे छूटता? परन्तु कच की उपस्थिति में मद्यपान करना वे टालते थे। इस कारण प्रमुख राक्षसगण उनके पास जाते एवं महत्त्वपूर्ण विषयों पर बातचीत होती तो कच को किसी काम के बहाने आचार्य बाहर भेज देते। कच ने जब देखा कि आचार्य के सान्निध्य में सदा रह सके, ऐसा और कोई मार्ग बचा नहीं है तो उसने पुनः मद्यपान प्रारम्भ किया। वह मात्र आचार्य की बैठकों में एवं केवल प्रसाद स्वरूप थोड़ा-सा मद्य लेने लगा। अब तक अपनी सेवा तथा चतुरता से उसने आचार्य का स्नेह सम्पादित कर लिया था। बीच के काल में उसके द्वारा मद्य का बहिष्कार कर दिये जाने के बाद से दोनों के बीच की कुछ दूरी रह गई हुई थी वह भी अब नष्ट हो गई और वह पूर्णतया आचार्य का विश्वासभाजन बन गया। मानों वह आचार्य के प्रत्यक्ष पेट में ही प्रवेश कर गया। उपनयन संस्कार की विधि में बताया गया है कि गुरु अपने शिष्य को तीन दिन तक अपने गर्भ में धारण करता है। यह लाक्षणिक वर्णन तो प्रसिद्ध ही है। किसी का पूर्ण विश्वास सम्पादित करने के अर्थ में 'पेट में घुसना' वाक्प्रचार आज भी रूढ़ है। उस दृष्टि से 'कच का शुक्राचार्य के उदर में प्रवेश ये शब्द पढ़े जायें एवं मद्य के माध्यम ये ही उसने उदर में प्रवेश किया, इस वर्णन की ओर ध्यान दिया जाए तो उक्त अर्थ के सम्बन्ध में किसी के मन में संशय उठने का कारण नहीं रहेगा।

इसके पश्चात् कच की उपस्थिति में ही राक्षसों की गुप्त मन्त्रणाएं चलने लगी। आचार्य भी कच के सामने ही राक्षसों का अभिमान जागृत करने वाले ओजस्वी तथा उग्र भाषण देते। कच इन बातों को बड़ी ही गम्भीरतापूर्वक दत्तचित्त होकर सुनता। उसका यह मनन भी करता। उसका मद्यपान तो इन दिनों नाममात्र का ही था। परन्तु कच ने थोड़ा-सा ही क्यों न हो, मद्यपान प्रारम्भ किया, इस कल्पना से ही देवयानी परेशान हो गई। मद्यपी पति के सहवास में उसे सम्पूर्ण वैवाहिक जीवन बिताना होगा, यह दुश्चिन्ता मन में उत्पन्न होने के कारण उसने फिर पिता के पास जाकर अपना दुखड़ा सुनाया।

शुक्राचार्य ने उसे समझाने का प्रयास किया। वे बोले ''कच अब कोई नवागन्तुक तो रहा नहीं। उसे यहां का सारा व्यवहार ज्ञात हो चुका है। इस अवस्था में मैं यदि उसे मद्यपान बन्द करने को कहूं तो प्रथम मुझे भी वह बन्द करना होगा, तभी इष्ट और अपेक्षित परिणाम होगा, परन्तु इस वृद्धावस्था में मैं मद्य के बिना एक दिन भी जीवित नहीं रह सकता। मद्यपान करना अब मेरा स्वभाव तथा प्रकृति बन चुकी है। इन बातों का विचार करके तू सोच ले कि क्या करना उचित होगा।'' तब

देवयानी अत्यन्त दीन वाणी से कहने लगी– ''बाबा, मुझे तो आप एवं कच दोनों ही चाहिए। आपने तो बचपन से ही माता के समान मेरा पालन-पोषण किया है और अब आपकी इस लाड़ली बेटी का भावी जीवन मंगलमय होने का समय निकट आ चुका है। फिर इस अड़चन से मुक्त होने का कोई मार्ग क्या आप ढूंढ नहीं निकालेंगे?''

शुक्राचार्य फिर पिघल गए। उन्होंने अपने मन में कुछ निश्चय किया। कच को पास बुलाकर उसे पुनश्च प्रारम्भ से सब बातों का स्मरण करा दिया। उन्होंने कच से प्रश्न किया– ''यदि कोई यह कहे कि व्यसनहीन बृहस्पति पुत्र कच मेरे यहां रहकर मद्यपी बन गया तो क्या वह मेरी अपकीर्ति नहीं होगी?'' प्रश्न सुनकर कच ने फिर एक बार भीषण प्रतिज्ञा की ''अपने व्यवहार के कारण आचार्य की अपकीर्ति होने देने की अपेक्षा मैं प्राणत्याग भी सहर्ष स्वीकार करूंगा।'' यह कहते हुए उसने आचार्य के चरणों पर मस्तक रखकर संकल्प किया कि इसके पश्चात् वह मद्य की एक बूंद का भी स्पर्श नहीं करेगा। शुक्राचार्य प्रसन्न हो गए। उन्होंने कच से कहा कि तुम्हारी सेवा एवं निष्ठा से मैं प्रसन्न हुआ हूं, अतः तुम्हें जो कुछ वरदान चाहिए, मांग लो।

**संजीवनी-साक्षात्कार**

कच ने अपना मनोगत स्पष्ट किया और कहा कि संजीवनी विद्या की प्राप्ति की एक मात्र लालसा को छोड़कर उसकी अन्य कुछ भी इच्छा नहीं है। शुक्राचार्य बोले– ''हे वत्स, संजीवनी की प्राप्ति तो तुम्हें बहुत पहले ही हो चुकी है। अपने सामर्थ्य एवं कर्त्तव्य का ज्ञान हो जाने पर उम्पन्न होने वाले आत्मविश्वास और आशावाद को ही संजीवनी कहा जाता है। इनकी प्राप्ति हो जाने पर कितनी भी असफलता मिले मनुष्य ध्येय-सिद्धि का प्रयत्न छोड़ता नहीं। इन राक्षसों का भूतकाल का इतिहास वैभवसम्पन्न एवं पराक्रमयुक्त है। उसका पुनश्च स्मरण करा देने पर, पराजय के प्रसंग उपस्थित होने पर भी वे निराश नहीं होते, सदा उद्योगरत ही रहते हैं। यही बात देवलोक में संजीवनी के नाम से प्रसिद्ध है। इस संजीवनी का प्रयोग प्रत्यक्ष तुम पर भी मैंने तीन बार किया। क्या तुम्हारे ध्यान में यह बात नहीं आई? हे बृहस्पति-पुत्र! मैं भी तुम्हारा अत्यन्त ऋणी हूं। यहां आने पर मद्यासक्त होकर पुनश्च तुम सावधान हो गए एवं पूर्णतः मद्यमुक्त हो गए। ब्राह्मण होने के कारण ही यह लोकोत्तर कर्म करना तुम्हारे लिए सम्भव हुआ। प्रत्यक्ष इन्द्र के लिए भी असम्भव कर्म तुमने करके दिखा दिया। दो-दो बार तुम्हें मद्यपी बनना पड़ा था, वह मेरे कारण। इस मद्यपान का परिणाम कितना भयंकर तथा हानिकर होता है, इसकी पूर्ण कल्पना मुझे है। मैं भी ब्राह्माण हूं, इस बात का लगभग मुझे विस्मरण ही हो गया था। यहां तुम्हारे रहने से एक प्रकार से मुझे भी संजीवन ही प्राप्त हुआ है। मैं भी इस क्षण से मद्य का त्याग कर रहा हूं। इतना ही नहीं, यदि कोई ब्राह्मण मोहवश मद्यपान करे तो वह निन्दा का पात्र है एवं मृत्यु के पश्चात् भी उसे सद्‌गति प्राप्त न हो, यह निर्बन्ध मैं डाल रहा हूं। यहां आने का तुम्हारा जो उद्देश्य था, वह अब सफल हो चुका है। अब चाहो तो तुम स्वर्गलोक वापस लौटकर इस विद्या का यथेच्छ उपयोग करो।''

कच बड़ा ही बुद्धिमान था। उसने आचार्य की मनःस्थिति एवं परिस्थिति अच्छी तरह से भांप ली थी। आचार्य ने मुझे शिष्य के रूप में ग्रहण कर ब्राह्मणत्व का जो आदर्श मेरे सामने रखा, उसी कारण मुझे इस विद्या की प्राप्ति हो सकी। ''आपकी यह उदारता निष्फल या व्यर्थ हुई, ऐसा अनुभव करने का मौका मैं आपको कभी न दूंगा।'' यह कहते हुए उसने आचार्य से विदा ली।

**शुक्राचार्य का पुनरुज्जीवन**

शुक्राचार्य ने कच को मद्यमुक्त करने के लिए स्वयं वृद्धावस्था में भी मद्यपान-त्याग का संकल्प लेकर मानों मृत्यु का ही आह्वान किया। उनके इस कृत्य को ध्यान में रखकर कच ने उनमें भी ब्राह्मणत्व का अभिमान जागृत किया एवं आमरण उन्हीं का शिष्यत्व कायम रखने का संकल्प घोषित किया और शुक्राचार्य में भी स्वजीवन सफल करने की भावना उत्पन्न करके मानों कच ने उन्हें मद्य के बिना भी जीवन धारण करने का सामर्थ्य प्राप्त करा दिया।

अपने घर वापस लौटने की अनुमति आचार्य से प्राप्त करके देवयानी से विदा लेने कच उसके पास गया। तब देवयानी ने अपना मनोगत स्पष्ट रूप से कच के सम्मुख रखा। कच ने पूर्ण निर्विकार वृत्ति से दृढ़निश्चय के स्वर में उससे कहा कि ''गुरु-कन्या प्रत्यक्ष बहन के समान होती है, अतः मेरे द्वारा ऐसा अयोग्य और अधर्म्य व्यवहार नहीं हो सकता।'' यह सुनते ही देवयानी आपे से बाहर हो गई। क्रोधित होकर वह अनाप-शनाप बातें कहकर कच को कोसने लगी। उसने कहा– ''हे कच, आज तक तुम यहां जीवित रह सके, वह मात्र मरे कारण ही। क्या तुम इसे भूल गए? संजीवनी की प्राप्ति तुम्हें आचार्य द्वारा हुई, वह भी मेरे ही मध्यस्थता का फल है। यह सब जानकर भी क्या तुम इस ओर दुर्लक्ष्य नहीं कर रहे हो? परन्तु ध्यान रहे कि यह संजीवनी विद्या देवलोक में काम नहीं आएगी। क्योंकि इन देवों का भूतकाल राक्षसों के अनुसार उज्जवल या वैभवपूर्ण और पराक्रमयुक्त नहीं है।''

**शाप और अभिशाप**

कच ने कुछ क्षण विचारकर कहा– ''राक्षसों का सारा भावी उत्कर्ष उनके उज्ज्वल भूतकाल पर निर्भर है, अतः उसके बल पर वे उछलकूद करें, यह स्वाभाविक ही है। यह भी सही है कि देवों को यह अनुकूलता प्राप्त नहीं है, अतः सम्भवतः संजीवनी विद्या का ऐसा उपयोग वे न भी कर सकें परन्तु देवों में बुद्धि है एवं 'बुद्धिर्यस्य बलम् तस्य' यह त्रिकाल-बाधित सिद्धान्त है। अतः हमें 'भविष्यत् में उर्जितावस्था प्राप्त होगी ही' ऐसी दुर्दम्य आशा-आकांक्षा रखकर तदर्थ उद्योग करने में, अर्थात् संजीवनी का उपयोग सफलता से कर सकने में, कोई बाधा या अड़चन आने का कारण नहीं। हे गुरुपुत्री, तूने जिस प्रकार मुझे प्राप्त संजीवनी विद्या के भविष्यत् के उपयोग के सम्बन्ध में शंका प्रदर्शित की है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे भवितव्य के सम्बन्ध में अपना प्रामाणिक विचार तुम्हें बता रहा हूं। अतः तुम मुझ से नाराज न होना। एक विशेष उद्देश्य मन में रखकर मैं यहां आया था। वह साध्य करके मैं अब वापस जा रहा हूं। तूने स्वयं ही मुझ पर अनन्त उपकार किए हैं, उसके लिए मैं सर्वदा तुम्हारा ऋणी रहूंगा। परन्तु एक बात ध्यान में रहे कि अपने किये सुकृत्य या उपकारों की

वाच्यता स्वमुख से करना सज्जनों को शोभा नहीं देता। दूसरी बात यह है कि शास्त्रों ने विधि-निषेध एवं मर्यादाओं की जो व्यवस्था बताई है, उसके विपरीत कर्म करने का आग्रह तू मुझसे कर रही है। यह तुम्हारा व्यवहार विप्र-कुलोचित नहीं। अतः मुझे ऐसा लगता है कि किसी विप्रकुमार से विवाह करने का सौभाग्य तुम्हें प्राप्त नहीं होगा।''

इतना कहकर अपनी सफलता प्रसन्न हास्य द्वारा मुख पर झलकाते हुए कच घर की ओर चल पड़ा। वह स्वर्गलोक पहुंचा तो देवों की सभा में उसका बड़ा सत्कार हुआ तथा यज्ञ में हविर्भाग लेने का अधिकार भी उसे प्राप्त हो गया।

**शर्मिष्ठा का समर्पण**

फिर अनुकूल समय पाकर देवों ने राक्षसों पर चढ़ाई करने की तैयारी की। कच के मुख से राक्षसराज वृषपर्जन्य के राज्य की सारी परिस्थिति वे सुन चुके थे। उस जानकारी के आधार पर देवों ने वृषपर्जन्य की कन्या शर्मिष्ठा एवं शुक्रकन्या देवयानी में कलह उत्पन्न करा दी। अपनी कन्या के अपमान से शुक्राचार्य क्रोधित हो गये और राक्षसों का त्याग करने के लिए उद्यत हुए। परन्तु शर्मिष्ठा ने देवयानी का दासत्व स्वीकार कर लिया और अपनी समाज सम्बन्धी कर्त्तव्यनिष्ठा प्रकट करके स्वजाति को संकट-मुक्त किया। यह कथा भी प्रसिद्ध है।

**सच्ची संजीवनी**

एक बार शरीर मृत होने पर यदि उसमें पुनश्च प्राणसंचार करने की सामर्थ्य संजीवनी विद्या में होती तो ऐसी संजीवनी विद्या सीखकर जबकि कच स्वर्गलोक लौटा था, देवों को उक्त प्रकार की कूटनीति का सहारा लेने की आवश्यकता ही नहीं होती। वे राक्षसों पर सीधा-सीधा आक्रमण करते। मृत राक्षसों को शुक्राचार्य एवं मृत देवों को कच या उसका कोई शिष्य जीवित करता, यही क्रम चलता रहता। परन्तु देवों ने ऐसा कुछ न करके कूटनीति का सहारा लिया। इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि संजीवनी विद्या मृत शरीर को फिर से सजीव करने वाली चैतन्य देने वाली विद्या नहीं है, अपितु उसका जो स्वरूप यहां वर्णित है, वहीं सत्य है। उसका यही अर्थ लेने से कच-कथा के वर्णन से उसकी संगति बैठती है।

# भारतीय संस्कृति में अवतारवाद का यथार्थ

डॉ. प्रशान्त गौरव

अवतार शब्द की व्युत्पत्ति 'अव' उपसर्ग पूर्वक 'तॄ' धातु में घञ् प्रत्यय से सिद्ध होती है। पाणिनि[१] के विशिष्ट सूत्र के अनुसार, 'अवतार' शब्द का अर्थ है, किसी ऊँचे स्थान से नीचे उतरने की क्रिया अथवा उतरने का स्थान। इस सामान्य अर्थ के अतिरिक्त इसका एक विशिष्ट अर्थ भी है– किसी शक्तिसम्पन्न भगवान् या देवता का मानव या अमानव रूप को धारण कर ऊपर के लोक से नीचे के लोक में उतरना। इसी अर्थ में पुराणों में 'आविर्भाव' शब्द का भी प्रयोग पाया जाता है। 'अवतार' की सिद्धि दो दशाओं में मानी जाती है– एक तो नवीन रूप का ग्रहण करना तथा दूसरा नवीन जन्म ग्रहण करना। किसी अलौकिक शक्ति से सम्पन्न व्यक्तित्व या भगवान् विष्णु, शंकर या इन्द्र आदि के लिए ये दोनों ही अवस्थायें उपयुक्त तथा सुलभ रही हैं। परिस्थिति के अनुसार कार्यवश भगवान् का बिना रूप परिवर्तन किये ही आविर्भाव होना 'अवतार' का ही रूप माना जाता है। जैसे प्रह्लाद को विपत्ति से उद्धार के लिए विष्णु का अपने ही रूप में आविर्भाव विष्णुपुराण[२] में तथा गजेन्द्र के उद्धार के लिए विष्णु का प्रादुर्भाव भागवतपुराण[३] में वर्णित है।

अवतार-संबंधी भावना का मूल ऋग्वेद[४] में मिलता है। जिसके पांचवें मंडल में अग्नि की एकता वरूण, मित्र तथा अर्यमन् से स्थापित की गई है। आगे चलकर देवता का तादात्म्य देवेतर योनि से स्थापित किया गया। यह प्रवृत्ति ब्राह्मण ग्रंथों के काल तक आविर्भूत हो चुकी थी जिनमें; मत्स्य, कूर्म, वराह तथा नृसिंह प्रजापित के तथा वामन विष्णु के रूपान्तर बताये गये हैं।[५] शतपथ-ब्राह्मण में एक स्थल पर कहा गया है कि प्रजापित ने कूर्म का रूप धारण कर प्रजा की रचना की।[६] जैसे-जैसे विष्णु की महत्ता प्रबल हुई तथा लोकरचना, लोकसंरक्षण, लोकसंहार की कल्पना विष्णु के व्यक्तित्व में सन्निहित हुई; रूपान्तर अथवा अवतार की भावना भी विष्णु के स्वरूप से संबंधित की गई। यही कारण है कि पुराणों ने ब्राह्मण ग्रंथों में वर्णित प्रजापित के उक्त रूपान्तरों के समाहार के साथ-साथ अन्य अवतारों की चर्चा की है। महाभारत में कूर्म, मत्स्य, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण तथा कल्कि विष्णु के अवतार माने गये हैं।[७] इसी प्रकार हरिवंश में कूर्म, मत्स्य, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कल्कि तथा बुद्ध नामक विष्णु के अवतारों का उल्लेख है।[८] स्थान-स्थान पर अन्य साहित्यिक ग्रंथों में भी प्रसंगवश विष्णु के अवतारों की चर्चा की गई है। उदाहरणार्थ, शिशुपालवध में नारद श्रीकृष्ण से कहते हैं कि उन्होंने नृसिंह के रूप में हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को नखों से विदीर्ण किया था।[९] दशरथ पुत्र राम के रूप में उन्होंने लंका नगरी के पास रावण को मारा था।[१०]

भारतीय परम्परा में भगवान् के चौबीस अवतारों की सामान्य प्रसिद्धि है। विष्णुपुराण में

अवतारों के संख्याक्रम का निर्देश नहीं है। भागवतपुराण[११] के अनुसार अवतारों का संख्याक्रम निम्न प्रकार है। १. ब्रह्मा के मानसपुत्र सनकादि, २. सूकर, ३. नारद, ४. नरनारायण, ५. कपिल, ६. दत्तात्रेय, ७. यज्ञ, ८. ऋषभदेव, ९. पृथु, १०. मत्स्य, ११. कच्छप, १२. धन्वन्तरि, १३. मोहिनी, १४. नृरसिंह, १५. वामन, १६. परशुराम, १७. व्यास, १८. दाशरथि राम, १९. संकर्षण बलराम, २०. कृष्ण, २१. बुद्ध, २२. कल्कि, २३. हंस और २४. हयग्रीव २५. ध्रुवनारायण और २६. गजेन्द्ररक्षक। जैनपरम्परा के पद्मानन्द महाकाव्य[१२] में भी ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभा, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभा, सुविधि या पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य विमल, अनन्त, धर्म, शांति, कुथु, अर, मल्लि, सुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व और महावीर- ये चौबीस धर्म के प्रवर्तक माने गये हैं। लंकावतारसूत्र[१३] में भागवत-पुराण के ही समान चौबीस बुद्धों का विवरण है।

विष्णु के अवतार के उद्देश्य को कई तरह से समझ सकते हैं। मत्स्यपुराण में एक स्थल पर विष्णु के अवतार का कारण माया को बताया गया है। यह वर्णन औपनिषदिक प्रभाव को व्यक्त करता है। उदाहरणार्थ, बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि इन्द्र मायावश अनेक रूप धारण करते हैं।[१४] पर इस संबंध में पुराणों के अन्य स्थल वेदोत्तरकालीन ग्रंथों से साम्य रखते हैं। हिन्दू-संस्कृति में यह विश्वास सनातनकाल से चला आ रहा है कि भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्ण साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा है। निर्गुण निराकार रूप सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही सगुण-साकार रूप में प्रकट होते हैं। जिस प्रकार आकाश में परमाणुरूप से स्थित जल ही बादल के रूप में प्रकट होते हैं, फिर जल और बर्फ के रूप में होकर बरसने लगते हैं, उसी प्रकार सर्ग के आदि में सारे पदार्थ भी निराकार से साकार बनते है। गीता में कृष्ण ने कहा है– **'अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।'** अर्थात् उस निराकाररूप ब्रह्म के सूक्ष्मशरीर से ही सारी स्थूल व्यक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार वह सच्चिदानन्दघन परमात्मा स्वयं ही निराकार रूप से साकाररूप को धारण करता है। इसे ही अवतार लेना कहते है। गीता में कहा गया है कि विष्णु का अवतार दुष्कर्मियों के विनाश के लिये होता है।[१५] इसी प्रकार रामायण में कहा गया है कि जिस समय विष्णु ने राम के रूप में अवतार लिया, अन्य देवगण ने भी उनकी सहायता के लिये पृथ्वी पर अवतीर्ण होने का निश्चय किया।[१६] विष्णुपुराण में श्रीकृष्ण कहते हैं कि उनका अवतार विश्व में कुमार्गगामी दुष्टों की शान्ति के लिये हुआ है।[१७] अन्यत्र श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए नारद कहते हैं कि उनका अवतार पृथ्वी का भार दूर करने के लिये हुआ है।[१८] एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि भगवान् का मनुष्य रूप धारण करने का उद्देश्य पृथ्वी का भार दूर करना है।[१९] इसी प्रकार वायु और ब्रह्माण्डपुराण में विष्णु के अवतार का उद्देश्य धर्म की व्यवस्था और असुरों का विनाश है।[२०] ठीक यही वर्णन मत्स्यपुराण[२१] में भी मिलता है।

विष्णुपुराण में कृष्ण द्वारा दंडित नागराज उन्हें संपूर्ण जगत् का सृष्टिकर्ता बताता है, अतएव वह स्वयं विष्णु द्वारा ही सृष्ट है। संसार की रचना के साथ विष्णु उसके रूप और स्वभाव को भी सृष्ट करते हैं। उसका सृजन सर्प-जाति में हुआ है। अपनी जाति के स्वभाव के कारण ही वह क्रूर है। इसमें उसका अपना कोई दोष नहीं है। नागपत्नियाँ अपने पति का प्राणदान माँगती हुई कृष्ण के अवतार का

उद्देश्य लोक-रक्षा बताती हैं। अतएव कृष्ण उस पर अनुकंप्य होकर तथा अपना चरण-चिह्न प्रदान कर उसे गरूड़ से भी सुरक्षित करते हैं। सन्मार्ग पर लाने के लिए वे उसे यमुना के जल से समुद्र के जल में भेज देते हैं।[२२] अन्यत्र शिशुपाल के बारे में कहा गया है कि कृष्ण के हाथों से मारे जाने पर उसे सायुज्य-लाभ हुआ।[२३] मत्स्यपुराण में कहा गया है कि विष्णु प्रत्येक युग में मायावश अवतार लेते हैं।[२४] विष्णुपुराण के अनुसार विष्णु अपनी इच्छा के कारण मनुष्य का रूप धारण करते है।[२५] वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में कहा गया है कि भक्तों का उपकार करनेवाले विष्णु अपनी इच्छावश मनुष्य का रूप धारण करते हैं, इनका रूप-विसर अप्रमेय है।[२६]

वाल्मीकी रामायण[२७] में लिखा है कि जब देवता और ऋषियों ने रावण के उपद्रवों से दुःखित हो ब्रह्माजी से प्रार्थना की, तब ब्रह्माजी उन्हें सान्त्वना देने लगे। उस समय भगवान श्रीविष्णु के प्रकट होने का वर्णन इस प्रकार आया है– उसी समय महान् तेजस्वी जगत्पति भगवान् विष्णु मेघ पर चढ़े हुए सूर्य के समान गरूड़ पर सवार हो, वहाँ आ पहुँचे। उनके शरीर पर पीताम्बर, हाथों में शंख, चक्र और गदा आयुध एवं भुजाओं में चमकीले स्वर्ण के बाजूबन्द शोभा पा रहे थे। सभी देवताओं ने उन्हें प्रणाम किया। भगवान् ने देवताओं की प्रार्थना पर दशरथजी के घर में मानवरूप से अवतार लेना स्वीकार किया। 'देवता और ऋषियों को भय देनेवाले उस क्रूर एवं दुर्धर्ष राक्षस का नाश करके मैं ग्यारह हजार वर्षो तक पृथ्वी का पालन करता हुआ मनुष्य लोक में निवास करूँगा।'[२८]

अध्यात्मरामायण[२९] में कथा आती है जब विश्वामित्रजी श्रीराम लक्ष्मण को यज्ञ की रक्षा के लिए ले जाने आये, उस समय दशरथजी के द्वारा सलाह के रूप में पूछे जाने पर वसिष्ठजी ने कहा– 'ये राम मनुष्य नहीं हैं, साक्षात् परमात्मा ही है। हे अनघ! पूर्वकाल में पृथ्वी का भार उतारने के लिए ब्रह्मा ने भगवान् से प्रार्थना की थी, उसे पूर्ण करने के लिए परमेश्वर ने तुम्हारे यहाँ कौसल्या के गर्भ में जन्म लिया है।' चित्रकूट में माता कैकेयी ने श्रीराम से क्षमाप्रार्थना करते हुए कहा है– 'आप साक्षात् विष्णु भगवान्, अव्यक्त परमात्मा और सनातन पुरूष हैं। अपने लीलामय मनुष्य रूप से आप समस्त संसार को मोहित कर रहे हैं।[३०] ब्रह्माजी श्रीराम का महत्व बतलाते हुए कहते हैं– आप भगवान् विष्णु, कृष्ण और प्रजापति हैं। आपने रावणवध के लिए ही मानवशरीर धारण किया है।'[३१] श्रीराम के परमधाम पधारने के प्रकरण से भी यह बात और स्पष्ट हो जाती है कि वे साक्षात् पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर थे। उस समय ब्रह्माजी के कथनानुसार भगवान् ने अपने भाइयों के साथ इस मानव विग्रह से ही उस वैष्णवतेज में प्रवेश किया।[३२] गीता[३३] में अपने अवतार लेने का कारण स्पष्ट करते हुए भगवन् श्रीकृष्ण जी अर्जुन से कहते हैं– 'जब जब धर्म की हानि और अधर्म की प्रतिष्ठा होती है, तब तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ।'

श्रीमद्भागवतपुराण[३४] में भगवान् श्रीकृष्ण माता देवकी से कहते हैं– 'संसार में शील, उदारता, आदि सद्गुणों में अपने सदृश दूसरे को न देखकर मैं स्वयं ही आप दोनों का पुत्र होकर पहले पृश्निगर्भ के नाम से विख्यात हुआ था। इसके बाद जब आप दोनों कश्यप और अदिति के रूप में प्रकट हुए, तब मैं उत्पन्न होकर 'उपेन्द्र' के नाम से विख्यात हुआ, उस समय मेरा शरीर छोटा होने के

कारण मेरा दूसरा नाम 'वामन' हुआ था। इस तीसरे कल्प में अब मैं ही उसी शरीर से आप दोनों के यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ हूँ। हे सती! मैंने यह आपसे सत्य कहा है।'

तुलसीदासकृत श्रीरामचरिचमानस में अवतारवाद स्थान-स्थान पर भरा हुआ है। बालकाण्ड[३५] में शिवजी पार्वतीजी से इस बारे में कहते भी हैं। अध्यात्मरामायण[३६] में आया है कि जिन चिन्मय अविनाशी प्रभु ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए देवताओं की प्रार्थना से सूर्यवंश में माया-मानवरूप से पृथ्वी पर अवतार लिया और जो राक्षसों के समूह को मारकर तथा संसार में पाप विनाशिनी अपनी अविचल कीर्ति स्थापित करके पुनः अपने आद्य ब्रह्मस्वरूप में लीन हो गये, उन श्रीजानकीनाथ का मैं भजन करता हूँ।

**विष्णु के साथ अन्य देवताओं का अवतार एवं अवतार के प्रकार** – विष्णुपुराण के अनुसार पृथ्वी पाप से भारपीड़ित होकर अपनी व्यथा ब्रह्मादि देवताओं को सुनाती है। देवता लोग विष्णु के पास जाते हैं। देवताओ की स्तुति से आप्लावित होकर विष्णु अवतार लेने का वचन देते हैं।[३७] गर्ग-संहिता में कहा गया है कि अशांश, अंश, आवेश, कला, पूर्ण और परिपूर्णतम– ये छः प्रकार के अवतार बतलाये गये हैं। इनमें छठा– परिपूर्णतम अवतार साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। मरीचि आदि 'अंशांशावतार', ब्रह्मा आदि 'अंशावतार', कपिल एवं कूर्म आदि 'कलावतार' और परशुराम आदि 'आवेशावतार' कहे गये हैं। नृसिंह, राम श्वेतद्वीपाधिपति हरि, वैकुण्ठ, यज्ञ और नर-नारायण ये 'पूर्णावतार' हैं तथा साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही 'परिपूर्णतम' अवतार हैं। आगे प्रत्येक का अलग-अलग विवरण प्रस्तुत है।

१. **अंशावतार** – असंख्य ब्रह्माण्डों के अधिपति वे प्रभु गोलोकधाम में निवास करते हैं। भगवान् के लिये गये सृष्टि आदि कार्यमात्र के अधिकार का जो पालन करते हैं, वे ब्रह्मा' आदि 'सत्' (सत्स्वरूप भगवान) के अंश हैं।

२. **अंशांशावतार** – जो उन अंशों में हाथ बँटाते हैं, उन्हें अंशांशावतार कहते है। इनमें कपिल और दत्तात्रेय हैं।

३. **आवेशावतार** – भगवान् विष्णु स्वयं जिनके अन्तकरण में आविष्ट होकर, अभीष्ट कार्य का सम्पादन करके फिर अलग हो जाते है, ऐसे नानाविध अवतारों को 'आवेशावतार' कहते हैं। परशुरामजी ऐसे ही अवतार हैं।

४. **कलावतार** – जो प्रत्येक युग में प्रकट हो, युगधर्म को जानकर, उसकी स्थापना करके, पुनः अन्तर्धान हो जाते हैं, भगवान् के उन अवतारों को 'कलावतार' कहा गया है। कपिल एवं कूर्म 'कलावतार' हैं।

५. **पूर्णावतार** – जहाँ चार व्यूह प्रकट हों– जैसे श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुध्न तथा वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरूद्ध एवं जहाँ नौ रसों की अभिव्यक्ति देखी जाती हो, जहाँ बल-पराक्रम की भी पराकाष्ठा दृष्टिगोचर होती हो, भगवान् के उस अवतार को 'पूर्णावतार' कहा गया है।

**६. परिपूर्णतम अवतार** – जिसके अपने तेज में अन्य सम्पूर्ण तेज विलीन हो जाते हों, भगवान के उस अवतार को श्रेष्ठ विद्वान् पुरूष 'साक्षात् परिपूर्णतम' कहते हैं। जिस अवतार में पूर्ण का पूर्ण लक्षण दृष्टिगोचर होता है और मनुष्य जिसे पृथक-पृथक् भाव के अनुसार अपने परम प्रिय रूप में देखते हैं, वही यह साक्षात् 'परिपूर्णतम' अवतार है।

इन सभी लक्षणों से सम्पन्न स्वयं परिपूर्णतम भगवान श्रीकृष्ण ही हैं, दूसरा नहीं, क्योंकि श्रीकृष्ण ने एक कार्य के उद्देश्य से अवतार लेकर अन्यान्य करोड़ों कार्यों का सम्पादन किया है। जो पूर्ण, पुराण पुरुषोत्तम एवं परात्पर पुरुष परमेश्वर हैं, उन साक्षात् सदानन्दमय, कृपानिधि, गुणों के आगर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की मैं शरण लेता हूँ।' यह नारद जी[३८] का कथन है– **अंशांशोऽशस्तथाऽऽवेशः कला पूर्णः प्रकथ्यते। व्यासाद्यैश्च स्मृतः षष्ठः परिपूर्णतमः स्वयम्।। अंशांशस्तु मरीच्यादिरंशा ब्रह्मादयस्तथा। कलाः कपिलकूर्माद्या आवेशा भार्गवादयः।। पूर्णो नृसिंहा रामश्च श्वेतद्वीपाधिपो हरिः। वैकुण्ठोऽपि तथा यज्ञो नर नारायणः स्मृतः।। परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्। असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोके धाम्नि राजते।। कार्याधिकारं कुर्वन्तः सदंशास्ते प्रकीर्तिताः। तत्कार्यभारं कुर्वन्तस्तेंऽशांशा विदिताः प्रभोः।।** इस तरह अवतारों के ये छः प्रकार हैं, जिनके अंतर्गत 'परब्रह्म' परमेश्वर ने अनेकों अवतार धारण किये हैं।

ईश्वर के अवतार के सम्बंध में श्रीमद्भागवत पुराण के प्रथम स्कन्ध में बताया गया है कि सृष्टि के आदि में भगवान् ने लोकों के निर्माण की इच्छा की। इच्छा होते ही उन्होंने महत् आदि से निष्पन्न पुरुषरूप ग्रहण किया। उसमें दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच भूत– ये सोलह कलाएँ थीं। भगवान् ने कारण–जल (जगत् का कारण द्रव) में शयन करते हुए जब योगनिद्रा का विस्तार किया, तब उनके नाभिसरोवर में से एक कमल प्रकट हुआ और उस कमल से प्रजापतियों के अधिपति ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। भगवान् के उस विराटरूप के अंग-प्रत्यंग में ही समस्त लोकों की कल्पना की गयी है।

भगवान् का वह रूप हजारों पैर, जाँघें, भुजाएँ और मुखों के कारण अत्यंत विलक्षण हैं उसमें सहस्रों सिर, हजारों कान, हजारों आँखे और हजारों नासिकाएँ हैं। हजारों मुकट और वस्त्र-कुण्डल आदि आभूषणों से वह उल्लसित रहता हैं। भगवान् का यही पुरुष रूप जिसे 'नारायण' कहते हैं, अनेक अवतारों का अक्षयकोश है। इसी से सारे अवतार प्रकट होते हैं। इस रूप के छोटे-से-छोटे अंश से देवता, पशु-पक्षी और मनुष्य आदि योनियों की सृष्टि होती है।

उसी 'नारायण' ने सर्वप्रथम 'कौमार सर्ग' में सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार; इन चार ब्राह्मणों के रूप में अवतार ग्रहण किया। दूसरी बार पृथ्वी के उद्धार के लिए वाराहरूप धारण किया और हिरण्याक्ष का वध किया। देवर्षि नारद के रूप में भगवान् का तीसरा अवतार हुआ। धर्म की 'मूर्ति' नामक पत्नी के गर्भ से नर-नारायण के रूप में चौथा अवतार हुआ। पाँचवें अवतार में सिद्धों के स्वामी 'कपिल' के रूप में भगवान् नारायण ने अवतार लिया, जिन्होंने सांख्य-शास्त्र का प्रणयन किया। छठें अवतार में अनसूया के गर्भ से 'दत्तात्रेय' के रूप में अवतार लिया। सातवीं बार रूचि प्रजापति का आकूति नामक पत्नी से 'यज्ञ' के रूप में भगवान् ने अवतार लिया और पुत्र याम आदि देवताओं के साथ स्वायम्भुव मन्वन्तर की रक्षा की।

राजा नाभि की पत्नी मेरू देवी के गर्भ से ऋषभदेव के रूप में भगवान् ने आठवाँ अवतार ग्रहण किया। इस रूप में उन्होंने परमहंसों का वह मार्ग जो सभी आश्रमियों के लिए वन्दनीय है, उसे दिखाया। ऋषियों की प्रार्थना से राजा पृथु के रूप में भगवान् ने नवाँ अवतार लिया। इस अवतार में उन्होंने पृथ्वी को कृषियोग्य समतल किया तथा पृथ्वी से समस्त औषधियों का दोहन किया। चाक्षुष मन्वन्तर के अंत में जब सारी त्रिलोकी समुद्र में डूब रही थी, तब उन्होंने 'मत्स्य' के रूप में दसवाँ अवतार ग्रहण किया। जिस समय देवता और दैत्य समुद्र-मंथन कर रहे थे, उस समय ग्यारहवाँ अवतार धारण करके कच्छपरूप से भगवान् ने मन्दराचल को अपनी पीठ पर धारण किया। बारहवीं बार धन्वन्तरि के रूप में अमृत लेकर समुद्र से प्रकट हुए और तेरहवीं बार मोहिनीरूप धारण करके दैत्यों को मोहित करके देवताओं को अमृत पिलाया।

चौदहवें अवतार में भगवान् नारायण ने नृसिंह रूप धारण किया तथा अत्यंत बलवान दैत्य हिरण्यकशिपु की छाती अपने नखों से फाड़कर भक्त प्रह्लाद की रक्षा कीं। पन्द्रवहीं बार 'वामन' का रूप धारण करके दैत्यराज बलि के यज्ञ में गये और उससे तीन पग में ही त्रिलोकी का राज्य ले लिया। सोलहवीं बार परशुराम अवतार में इक्कीस बार आततायी क्षत्रियों का संहार किया। इसके बाद सत्रहवें अवतार में सत्यवती के गर्भ से पराशरजी के द्वारा वेद व्यास के रूप में अवतीर्ण हुए। उस समय लोगों की समझ और धारणाशक्ति कम देखकर, वेदरूप वृक्ष की अनेक शाखाएँ बना दीं।

अठारहवीं बार देवताओं का कार्य सम्पन्न करने की इच्छा से भगवान् ने श्रीराम के रूप में अवतार लिया तथा 'रावण' सहित अनेक राक्षसों का वध किया। उन्नीसवें और बीसवें अवतार में भगवान् ने यदुवंश में बलराम और श्रीकृष्ण के नाम से प्रकट होकर पृथ्वी का भार उतारा। उसके बाद कलियुग आ जाने पर मगधदेश (बिहार) में देवताओं के द्वेषी दैत्यों को मोहित करने के लिए 'अजन' के पुत्र के रूप में आपका (भगवान् का) बुद्धावतार होगा। इसके बाद भी बहुत पीछे जब कलियुग का अंत समीप आ जाएगा और राजा लोग प्रायः लुटेरे हो जायेंगे, तब जगत् का कल्याण करने के लिए 'विष्णुयश' नामक ब्राह्मण के घर में कल्कि रूप में अवतार ग्रहण करेंगे।[३६]

उपर्युक्त वर्णन में केवल बाइस अवतारों की गणना है। किन्तु भगवान् के चौबीस अवतार प्रसिद्ध हैं, उनमें भी दस अवतार मुख्य माने गये हैं। कुछ विद्वान् चौबीस अवतारों की संख्या इस प्रकार पूर्ण करते हैं– 'राम-कृष्ण के अतिरिक्त बीस अवतार तो उपर्युक्त ही हैं, शेष चार अवतार श्रीकृष्ण के ही अंश हैं। स्वयं श्रीकृष्ण तो पूर्ण परमेश्वर हैं। अतः श्रीकृष्ण को अवतारों की गणना में नहीं गिनते। उनके चार अंग ये हैं– एक तो केश का अवतार, दूसरा सुतपा तथा पृश्नि पर कृपा करने वाला अवतार, तीसरा संकर्षण और चौथा परब्रह्म। इस प्रकार इन चार अवतारों से विशिष्ट पाँचवें साक्षात् वासुदेव हैं।' दूसरे विद्वान् ऐसा मानते हैं कि बाइस-अवतार तो उपर्युक्त हैं ही, इनके अतिरिक्त दो और अवतार है– हंस और हयग्रीव। इस प्रकार चौबीस अवताओं की संख्या पूर्ण हो जाती है।'

उपर्युक्त अवतारों में सत्रहवें अवतार को 'व्यास' तथा अठारहवें अवतार को रामावतार माना गया है। जबकि 'व्यास' से पूर्व ही 'राम' का अवतार (त्रेतायुग में) हुआ था। इससे अवतार क्रम में

दुविधा दीखती है। शास्त्री राम प्रताप त्रिपाठी वायु पुराण के हिन्दी अनुवाद के आमुख में लिखते हैं कि वेदव्यास द्वारा प्रतिपादित कथाओं का प्रचार तात्कालिक सूतों के द्वारा हुआ। वंश परम्परा के अनुसार सूत घूम-घूम कर कथाओं का संशोधन एवं मनोरंजन करते थे। विभिन्न सूतों के मुखों से उद्गीर्ण पौराणिक कथाओं में कालक्रमानुसार पाठान्तर और प्रक्षेप उत्तरोत्तर बढ़ते ही गए। फिर भी पुराणों की मौलिकता और वास्विकता समूल नष्ट नहीं हुई, हां असीक्ष्यकारी पाठकों के लिए भ्रम और विवाद उत्पन्न हो गया।[४०] उपरोक्त अन्तर इसलिए भी सम्भव है कि व्यास एक उपाधि है। विष्णु पुराण में वर्णन है कि व्यास प्रत्येक चतुर्युगी में पैदा होते हैं। इस पुराण में वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईस चतुर्युगों के अट्ठाईस व्यासों के नाम हैं। पौराणिक संशयात्मक प्रसंगों के ऐसे कारण तो बतलाए जा सकते हैं, तथापि ऐसे प्रसंगों पर गहन विमर्श और अनुसंधान की आवश्यकता है जिससे तथ्यात्मक यथार्थ निष्कर्ष सामने आ सके।

**संदर्भ-ग्रंथ :**


१. पाणिनी, अवे तृस्त्रोर्घञ् ३.३.१२०.

२. तस्य तच्चेतसो देवः स्तुतिमित्थं प्रकुर्वतः। आविर्बभूव भगवान् पीताम्बरधरो हरिः।।
विष्णुपुराण १.२०.१४.

३. भागवतपुराण १.३.

४. ऋग्वेद ५.३.१,२

५. इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग १७, पृ. ३७०-७१.

६. स यत्कूर्म नाम। एतद्वैरूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत...। शतपथ-ब्राह्मण ७.५.१.५

७. कूर्मश्च-मत्स्यश्च...। वराह नरसिंहश्च वामन राम एव च। रामश्च दाशरथीश्चैव सात्वतः कल्कि.. महाभारत, नारायणीय, ३३९,१०४.

८. इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग १७, पृ. ३७६

९. सटाच्छटाभिन्घनेन बिभ्रता नृसिंह.... तनुं त्वया.... उरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः। शिशुपालबध १,४७,४८

१०. ....दाशरथिर्भवान्... लंकां निकषा हनिष्यति। वही

११. भागवतपुराण १.३.२-२५.

१२. पद्मानन्द, तीर्थकर, श्लोक ६७-७६.

१३. लंकावतारसूत्र पृ. २५१.

१४. इन्द्रो मायाभिः पुरूरूप ईयते। बृहद. उप. २.५.१९.

१५. विनाशाय च दुष्कृताम्। भगवद्गीता ४,८

१६. पुत्रत्वं तु गते विष्णौ... उवाच देवताः सर्वा... विष्णोः सहायान्बलिनः सृजध्वं कामरूपिणाः। रामायण, बालकांड १७/१.२

१७. एतदर्थं तु लोकेऽस्मिन्नवतारः कृतो मया। यदेषामुत्पथस्थानां कार्या शांतिर्दुरात्मनाम्।।
विष्णुपुराण ५/७/६

१८. भारावतारकर्त्ता त्वं पृथिव्याः पृथ्वीधर। वही, ५,१६,२५

१९. भगवन्तमादिपुरूषं पुरूषोत्तममवनिभारावतारणायांशेन मानुषरूपधारिणम्...। वही, ४,१३,२०
२०. कर्तुंधर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम्। वायुपुराण ६९/२३२, ब्रह्माण्डपुराण ३/७१/२४१
२१. कर्तुं धर्मस्य संस्थानमसुराणां प्रणाशनम्। मत्स्यपुराण ४७/१२
२२. सर्पजातिरियं क्रूरा यस्यां जातोऽस्मि केशव। तत्स्वभावोऽयमत्रस्ति नापराधो ममाच्युत।। जातिरूपस्वभावाश्च सृज्यन्ते सृजता त्वया। कोपः स्वल्पोऽपि ते नास्ति स्थितिपालनमेव ते।। नात्र स्थेयं त्वया सर्प कदाचिद्यमुनाजले। सपुत्रपरिवारस्त्वं समुद्रसलिलं व्रज।। विष्णुपुराण ५,७. ७१-७३, ७७
२३. भगवाता च स निधनमुपनीतस्तत्रैव... सायुज्यमवाप। वही, ४.१४.५२
२४. विष्णुर्युगे युगे जातो नानाजातिर्महातनुः। मन्यसे मायया जातं विष्णु चापि युगे युगे। मत्स्यपुराण १५४,१८०,१८१
२५. आत्मेच्छया कारणरूपधारिणो.....। विष्णुपुराण ४.२०.५२.
२६. अप्रमेयो नियोज्यश्च यत्र कामचरो... प्रविष्टो मानुषीं योनिम्।। वायुपुराण ९८.९५,९६ अप्रमेयो नियोज्यश्च यतकामचरो... प्रविष्टो मानुषीं योनिम्।। ब्रह्माण्डपुराण ३.७३.९४,९८.
२७. एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरूपयातो महाद्युतिः। शंखचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः।। वैनतेयं समारूह्य भास्करस्तोयदं यथा। तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः।। वाल्मीकी रामायण बालकांड १५.१६,१७.
२८. हत्वा क्ररं दुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम्। दशवर्ष सहस्राणि दशवर्षशतानि च।। वत्स्यामि मानुषे रूपे पालयन्पृथिवीवीमिमाम्।। - बाल्मीकी रामायण, बालण्ड- १५.२९-३०.
२९. श्रृणु राजन् देवगुह्य गोपनीयं प्रयत्नतः। रामो न मानुषो जातः परमात्मा सनातनः।। भूमेर्भारावताराय ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा। स एव जातो भवने कौसल्यायां तवानघ।। - अध्यात्मरामायण, बालकाण्ड-४.१२-१३.
३०. तवं साक्षाद्विष्णुरव्यः परमात्मा सनातनः। मायामानुषरूपेण मोहस्यखिल जगत्।। - अध्यात्मरामायण, अयोध्या, ६.५७.
३१. भावान्नारायणो देवः श्री माश्चक्रायुधः प्रभुः। सीतालक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः। वधार्थ रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम्।। - वाल्मीकी रामायण, युद्धकाण्ड ११९.१३,२६,२८.
३२. 'विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः।' - वाल्मीकी रामायण, उत्तरकाण्ड ११०.१२
३३. अजोऽपि स व्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।। यदा-यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्।। परित्रणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे।। - गीता- ४. ६-८.
३४. अदृष्ट्वान्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम्। अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः।। तयोर्वा पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात्। उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाश्च वामनः।। तृतीयेऽस्मिन् भवेऽहं वै तेनैव वपुषाथवाम्। जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति।। - श्रीमद्भागवत १०.३.४१-४३.

३५. जब जब होई धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम-अभिमानी।। करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।। तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।। असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु। जग विस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु।।-बालकाण्ड-१२०-घ.३-४, दोहा-१२१.

३६. यः पृथ्वी भरवारणाय दिविजैः संप्रार्थितश्चिन्मयः, संजातः पृथिवीतले रविकुले मायामनुष्योऽव्ययः। निश्चक्रं हतराक्षसः पुनरगाद् ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरां, कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे।।-अध्यात्मरामायण बालकाण्ड प्रथम सर्ग-१.

३७. विष्णु पु. ५,१,१२.१३.२६.३०.५६।

३८. गर्गसंहिता-गोलोकखण्ड, अध्याय प्रथम.

३९. श्रीमद्‌भागवत पुराण, प्रथम स्कन्ध, तृतीय अध्याय।

४०. वायुपुराणम् (हिन्दी अनुवाद सहित) राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री (अनुवादक), हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, द्वितीय संस्करण १९८७, पृ २.

४१. विष्णु पुराण, अंश ३, अध्याय ३.

**सह-प्रोफेसर, इतिहास विभाग**
**राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय**
**सेक्टर ४६, चंडीगढ़**

# Science in Ancient Indian Scriptures: Bhumi Sukt (Atharv Ved) and Heat inside Earth

**Dr. Bhag Chand Chauhan**

*Man must have an original cradle land whence the peopling of the earth was brought about by migration. As to man's cradle land there have been many theories but the weight of evidence is in favour of Indo-Malaysia.*

***- Encyclopardia Britannica***

It is corroborated by the researchers that up to the 15$^{th}$ century, Europe was in the Dark Age. Historians call this period as the Dark Age because there was no knowledge like mathematics, science, medicine etc…in Europe. Long back, there was enlightenment for short period in a limited part of Europe, i.e. in Greece from 6$^{th}$ century BC for a few centuries by import of knowledge from India through Arabs. This period is called the first awakening of Europe and the reappearance of knowledge in the 16$^{th}$ century is called the Renaissance. India was the phenomenal source of concept knowledge, information and technology. The vast ocean of scriptures, like Bhagvad Gita, Mahabharat, Ramayan and Upanishads, greatly evidences an unimaginable expansion of human consciousness.

The Vedic culture, developed by the Aryans, *flourished in the fertile banks of the Indus and Sarswati rivers.* These people were elite, intellectual and socially developed. They were quite familiar with the laws and principles of nature. They constructed a scientific culture and their science was highly developed, and technologically they were advanced to the great heights[1]. The Rishis and Maharshis were basically the Scientists, who used to perform experiments with nature using human body and mind as instrument. They resolved the mysteries and puzzles of nature mostly with meditation, their intuitions, and experiences with error and trial methods.

The ancient scriptures describe the magnificent work of these scholars. Starting from the state of nothingness to creation and evolution of the entire universe, including stars, solar system, planets, earth and life have been well accorded in these books. For example, gravitation has many references in the ancient Indian texts: *Prasnopanishad* (3.8), *Aitareya Upnishad* (1.3.10), *Sidhanta-Shiromani-Bhuvanakosha-6*, 528 AD; *Bhaskracharya* (1114-1179). Gravity was known to Indians at least 400 yrs before the law of Newton. Earth is round was known to Indians much before the Europeans: The 2$^{nd}$ Incarnation of *lord Vishnu (Varah)* depicted as lifting up a foot-ball shaped earth. Velocity of light is 4404 *Yojan/Nimes* mentioned in *Rik-Samhita-1.50.4,* which exactly corroborates with presently known value: 3 Lakh km/s. Solar, Earth, Moon Distances and their Diameters are given in *Surya-sidhanth*, *Madhyamadhikarah, 59. Bhaskracharya* calculated the time taken by the earth around sun i.e. 365.258756484 days.

*Heliocentric theory* of gravitation was given by *Aryabhata* at least 1000 yrs. predating *Copernicus.* Aryabhata also worked on fractions, quadratic equations, sums of power series, equations of imaginary numbers (square root of - 1), etc. In his work he revealed that the planets and the moon do not have their own light, but reflected the light of the Sun. The earth rotated on its axis causing day and night and also round the Sun causing year. Aryabhata calculated the radii of planetary orbits. His calculation of earth's diameter was very accurate. Incredibly he believed that the orbits of planets are ellipse and not circles. He correctly explained the causes of solar and lunar eclipses.

Moon as the natural satellite of Earth is mentioned in *Rigveda 10.189.1; Taittriya Samhita 1.5.1.3,4.* Planets and their rotation periods around Sun are given in *Aryabhateeyam-Kalakriyapada 3.17. 499 AD.* The elliptical orbits of planets around sun are mentioned in *Rig-Veda 1.164.2.* Solar and Lunar Eclipses are calculated in *Aryabhateeyam-Golapada 37; 499 AD,* also in Surya Sidhanta and Jyotish Shashtra. Relativity of Space and Time is revealed in *Srimad Bhagvata 9.3.27-36,* i.e. thousand years before Einstein.

The Vedas say the whole universe is full of fire and there is a golden yellow colour fire *Hirnyanabh* continuously burning at the centre i.e. *Nabhi* of the earth. In all the four Vedas the maximum number of Shloka are devoted to the god Agni-- *Agni Devta*. The exact version of the *Atharv Ved, 12$^{th}$ Khand, Bhumi Sukt 12$^{th}$* Shlok is as under:

**यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।**
**तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।**
**पर्जन्य पिता स उ नः पिपर्तु।।**

(अथर्ववेद भूमि सूक्त १२/१/१२)

Oh earth! Dwell us in your naval i.e. the energy source situated at your centre. Purify us from all directions. Earth is my mother and I am her son. Nourish us like father.

**अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद्**
**गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य।**
**तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी**
**तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान्।।**

(अथर्ववेद काण्ड ११, सूक्त ७, मन्त्र १०)

The above shlok clearly means that the treasures inside the earth are the main goals of research for scientists.

**अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।**
**होतारं रत्नधातमम्।**

(ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १, मन्त्र १)

In all the four Vedas most of the verses are devoted to the Fire god – *Agni Devta.* In summary, the entire universe is full of fire; however this is just one-fourth of the cosmic body of God.

**गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।**
**पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ।।** (गीता १५/१३)

I enter inside the earth and hold the entire material things with my power and nourish all the medicines with my power (the power of Moon god).

There are some synonyms of Earth – *Prithivi,* which represent the various characteristics of it.

**विश्वंभरा, वसुधानी, हिरण्यवक्षा, (अथर्ववेद १२।१।६); अग्नि-गर्भा (श० १४।६।४।२१); अग्निवासा (अथर्व० १२।१।२१); निधिं बिभ्रती (अथर्व० १२।१।४४); जनं बिभ्रती (अथर्व० १२।१।४५); मल्वं बिभ्रती (अथर्व० १२।१।४४), शन्तिवा, सुरभिः स्योना, कीला-लोध्नी, पयस्वती(अथर्व० १२।१।५६); पृथिवी प्रसूता(अथर्व० १२।१।६२)।**

In Sri Vishnu Sahasrnamstrotam some of the names are pertaining to earth and are relevant to consider here.

**भूगर्भः - पृथ्वी के गर्भ में रहने वाले,** : LIVING AT THE CENTRE OF EARTH

**महीभर्ता - पृथ्वी को धारण करने वाले,** : HOLDING THE EARTH

**हिरण्यनाभ** : HAVING GOLDEN (RADIO ACTIVE) NAVAL

**विश्वरेता** : CAUSE OF LIFE ON EARTH

These descriptions of the planet are also confirmed by the modern scientific observations. The heat source inside the earth exerts pressure towards the surface where it leads to geo-dynamism and geothermal events like spectacular volcanoes, high heat flow regions etc…

Unlike other planets of the solar system, earth is a highly dynamic; some heat activity is relentlessly going on *Akhand Jyoti* in the interior of it. The theories say traversing a journey of hundreds of million years since its birth the earth has been going through a continuous geological change. As a result the continents on the surface had different shapes and were located in different positions from those we find them today [2].

According to some well accepted models the earth was formed as a cosmic fire ball proto-planet resulted by the accretion of millions of smaller objects originated from the cosmic debris[3]. Till date the residual heat contributes about 20% and rest is produced through the radioactive decay [4]. The model says that major heat-producing isotopes in the earth are Potassium-40, Uranium-238, Uranium-235, and Thorium-232 [5]. Based on available scientific evidence, earth's crust and upper mantle primarily composed of solid rocks. Geologists believe that the decay of radioactive elements in the solid rocks of the mantle and crust must heat up the rocks up to 750-1000 °C and melt the rocks to form the magma[2].

There is a more recent model, in which J. Marvin Herndon proposed earth's inner core as a nuclear reactor– a source of earth's heat i.e.[6] *Hirnyanabh* as mentioned in ancient scripts. The earth's internal heat powers all geodynamic processes along with generation of geomagnetic field. At the center i.e. *Nabhi* of earth, the temperature may be up to 6,000 °C and the pressure could reach 360 GPa [7].

It is actually this geothermal heat which makes the animal and plant life possible on this planet. Apart from solar heat this energy helps life on earth to sustain. This energy provides a minimum amount of heat and a sufficient buoyant support to keep the crust and surface of mountain up high above the sea level. The researchers of Utah University[8] Professor David Champman and his student Derrick Hasterok that most part of the USA would have been 1-2 km down the sea without the support of this energy. The shlok of Srimad Bahgvat Gita also say something similar, but in a more general sense.

It has been estimated that a global terrestrial heat of 44.2 Terawatts (TW) power at the rate of 87 milli W/sq m[9] is being dissipated by the earth into atmosphere continually and is replenished by the self-sustained nuclear fission reactions. The large heat flow have been found to occur on the plate boundaries; besides the plate margins the high heat flow values occur in areas under tension where the crust is thinner than normal. The high heat flow values on the continents are from volcanic and tectonically active regions while the highest values in the oceans are found near the area of oceanic ridges. Heat moves up as the result of an unequal distribution inside the earth. The plate motion is driven by a thermal engine. This movement of lithosphere plates generates earthquakes, volcanic activity and deformation of rock masses into mountains[2]. In other words, the energy widely dispersed in the remaining body of the earth energizes the solid earth, including core and mantle convection, plate motion, mountain building, earthquakes and volcanism.

In a recent work [10], we argue that most of the geothermal energy inside the earth escapes as heat and eventually radiates in outer space through the volcanoes, hotspots and hot springs etc… However, a tiny bit of this energy is released as earthquakes, where the pressure is too high and passage to release through is rather tough. The high temperature geothermal resources create earthquakes at plate boundaries whereas low to intermediate temperature geothermal resources fund intra-plate seismicity. The plates are merely a working solid while the driving force is the geothermal energy. The violent flow and enormous pressure of this power shake the earth along the plate boundaries and also triggers the intra-plate seismicity. In the light of the results reported by the California Energy Commission from the ongoing geothermal power project at the Big Geysers in California, it has been further propounded that by harnessing the surplus geothermal energy the intensity and risk of the impending earthquakes can be substantially reduced.

In summary, it has been shown that the ancient scriptures not contain the spiritual/ religious verses, but also describe nature starting from the state of nothingness to creation and evolution of the entire universe, including stars, solar system, planets, earth and life on it. *The Atharv Ved, Bhumi Sukt 12*th Shlok and hymn accorded in the other scriptures like *Srimad Bhagvat Gita* about the mother earth-- *Prithivi* are parallel to the current understanding of modern science. In other words, the verses stated in our ancient scriptures state truth about nature and the entire

universe and the only effort needed is to decode these words, lines, and mantra properly.

**Acknowledgements:**

The author is thankful to Surya Prakash Kapoor for useful information and discussion during the completion of this work.

**References :**

1. Rahman A. "Science & Technology in Indian Culture" 1984, NISTAD, New Delhi; "High Technology in Ancient India", Vedic Science Vol. 7, No. 3, 2005.
2. Edward J. Tarbuck and Frederick K. Lutgens, "Earth: An Introduction to Physical Geology", Prentice Hall Inc., New Jersey, 1996.
3. Alex N. Halliday, Elements 2, p205, 2006.
4. Turcotte D.L. and Schubert G., "Geodynamics" (2 Ed.), Cambridge University Press, p136, 2002.
5. Sanders, R. (2003-12-10); UC Berkeley News. Retrieved 2007-02-28.
6. Marvin Herndon J., Journal of Geomag. and Geoelectr. 45, p423, 1993; Current Science 93, no. 11, p1485, 2007.
7. Alfè D. et al, *Philosophical Transactions of the Royal Society* 360, p1227, 1795.
8. Hasterok, D. and Chapman, D.S., "Continental Thermal Isostacy: 2 Application to North America", J. Geophys. Res., 112, B06415, 2007.
9. Pollack Henry N., Hurter Suzanne J. and Johnson Jeffrey R., Reviews of Geophysics 31 (3): p267, 1993.
10. Kapoor, S.P. and Chauhan, B.C., "Earthquake and Geothermal Energy", Universal Journal of Geoscience 2(5): p145, 2014.

**Department of Physics & Astronomical Science,**
**School of Physical & Material Sciences,**
**Central University of Himachal Pradesh,**
**Dharamshala, Kangra -176215**

दिव्य विभूति

# तुलसी जय तुम्हारी

**डॉ. परितोष बैलगो**

भारतवर्ष की पुण्य धरा पर प्रयाग के समीप चित्रकूट मण्डल के अन्तर्गत राजपुरा नामक गांव में भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुसलीदास का जन्म विक्रमी संवत् १५५४ को श्रावण मास, शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि के दिन हुआ। उनका जीवन श्रीराम के चरणों में समर्पित रहा और उन्होंने एक अभूतपूर्व ग्रन्थ रत्न रामचरितमानस हिन्दू समाज को प्रदान किया जो हिन्दू समाज तक ही सीमित न रह कर विश्व समाज की निधि बन गया है। भारतीय साहित्य में जो ख्याति रामचरितमानस को प्राप्त हुई है, किसी अन्य को नहीं मिली है। जब से यह ग्रन्थ लिखा गया इसके न जाने कितने संस्करण छप चुके हैं। देश क्या, इसे विश्व की सर्वाधिक प्रिय पुस्तक कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी।[१] भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के अन्तर्गत मानस की रचना एक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना है। जिसमें तुलसी की महत्ता अपनी निजी है।[२] रामचरितमानस द्वारा उन्होंने हिन्दी को संस्कृत के समकक्ष स्थान प्रदान किया। रामचरितमानस ने पिछली शताब्दियों में करोड़ों हिन्दी और अहिन्दी भाषियों के हृदय को स्पर्श करके उन्हें मानसिक शान्ति प्रदान की है और जीवन को उन्नत बनाया है। इसकी तुलना संसार के किसी भी ग्रन्थ से नहीं की जा सकती।

साहित्य मनीषी विष्णु कान्त शास्त्री ने गोस्वामी तुलसीदास के प्रति अपने भावोद्गार व्यक्त करते कहा है –

**विनय के आगार मर्यादा पुजारी।**
**भक्ति के आधार, तुलसी जय तुम्हारी।**

तुलसीदास भक्तमाल के सुमेरु माने गए हैं। उनका रामचरितमानस हिन्दी काव्यमाला का सुमेरु है। यह एक अनूठा महाकाव्य है जिसमें भक्ति की भूमि पर इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, कथाकाव्य, चरितकाव्य और लोककाव्य का अद्भुत समन्वय किया गया है। उसका नायक परब्रह्म परमेश्वर है। उसकी पुरातन प्रतिपाद्य वस्तु में नवीनता की कमनीय कांति है। उसका अंगी-रस भक्ति रस है। इसमें सुन्दर कवित्व और शिव मोक्षतत्व की अलौकिक द्विवेणी है। यह उसका महत्तम गुण है।[५]

कहते हैं, जो भूतकाल में घटित हुआ, वर्तमान में घटित हो रहा है और भविष्य में घटित होगा, वह सब वेद से ही सिद्ध होता है : भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति- (मनुस्मृति, १२,९७ उत्तरार्द्ध)। ठीक यही उक्ति तुलसी साहित्य के सम्बन्ध में भी चरितार्थ होती है अर्थात् तुलसी काव्य सभी कालों में प्रासंगिक बना रहेगा।[६] तुलसी का जीवन दर्शन सत्यद्रष्टा और सौंदर्य स्रष्टा का दर्शन है, जो प्रेम, सौन्दर्य के माध्यम से श्रेयमय चरम सत्य की अनुभूति और अभिव्यक्ति करता है। यह एक

भक्त ऋषि का दर्शन है, जो कोरे बौद्धिक, विचारक और मतवादी चिन्तक के जटिल ऊहापोह और मानसी विकल्पों के प्रपंच से परे चराचर व्यापिनी मंगलमय परम सत्ता के चिद्विलास का साक्षात्कार करता और कराता चला है।[७] तुलसी के व्यक्तित्व का सर्वांश राम के प्रेम से भीगा हुआ था। वे सिर से पैर तक राममय थे।[८] इसका महत्व इसी से आंका जा सकता है कि शायद ही कोई ऐसा हिन्दू परिवार हो जहां रामचरितमानस की प्रति न हो। इसमें चित्रित जीवन के आदर्श और मूल्य ही एक हिन्दू के आदर्श जीवनमूल्य होते हैं।[९] तुलसीदास ऐसे कवि थे कि उनकी कविता उनके अन्तश्चेतन का सुफल है। वह ऐसे कवि हैं जो कभी पुराने नहीं पड़ते, चिरनवीन बने रहते हैं। उनकी यह नवीनता उनकी हर अगली रचना में झलकती है। यही उनकी कविताश्री की विशेषता है।[१०]

तुलसीदास शुद्ध हृदय, साधु ऋषि, तत्वद्रष्टा, समाज सुधारक और मानव समाज से ही नहीं वरन् सम्पूण जीवधारियों से स्नेह करने वाले व्यक्ति थे। उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज की अनेक समस्याओं को युग-युग की समस्याओं के रूप में देखकर उन्हें शाश्वत रूप से सुलझाने का प्रयत्न किया था। निर्गुण-सगुण, शैव-वैष्णव, अवतारवाद तथा लोकजीवन की समस्याओं और विवादों को दूर किया। समाज के प्रत्येक वर्ग को संतुष्ट करने वाला तुलसी का मानस हिन्दू धर्म और समाज का अमृत सागर है। जनसाधारण के लिए तुलसी ने रामचरित मानस के अनेक प्रसंगों में, विशेष परिस्थितियों में आदर्श आचरण एवं व्यवहार द्वारा लोकरीति का पालन और रामराज्य का मार्ग बताया है।[११]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तुलसी व्यक्तित्व और महत्त्व के संबन्ध में लिखते हैं कि तुलसीदास का महत्व बताने के लिए विद्वानों ने अनेक प्रकार की तुलनात्मक उक्तियों का सहारा लिया है। नाभादास ने इन्हें कलिकाल का वाल्मीकि कहा, स्मिथ ने मुगलकाल का सबसे बड़ा व्यक्ति माना, ग्रियर्सन ने बुद्धदेव के बाद सबसे बड़ा लोकनायक कहा और यह तो बहुत लोगों ने बहुत बार कहा कि उनकी रामायण भारत की बाइबल है। इन सारी उक्तियों का तात्पर्य यही है कि तुलसीदास असाधारण शक्तिशाली कवि, लोकनायक और महात्मा थे।[१२] तुलसी ने रामकथा के विविध प्रसंगों के माध्यम से राजनीतिक, सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन के आदर्शों को जनता के सामने प्रस्तुत कर विघटित एवं विशृंखलित हिन्दू समाज को केन्द्रित किया। उन्होंने अपनी बात को सीधी, सरल एवं सहज साध्य में कहा। उनके राम सृष्टि के कण-कण में व्याप्त हैं, वे सभी के लिए उसी प्रकार सुलभ हैं, जिस प्रकार अन्न और जल –

**निगम अगम, साहब सुगम राम सांचिली चाह।**
**अम्बु असन अवलोकित सुलभ सबहि जग माह।**[१३]

तुलसीदास का रामचरितमानस सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। लोक मर्यादा की स्थापना के लिए इससे उत्तम ग्रन्थ न तो हिन्दी में पहले लिखा गया था और न उसके बाद लिखा गया। तुलसी के अन्य ग्रन्थ भी भक्ति, प्रेम और समन्वय की दृष्टि से उच्च कोटि के हैं। उन्होंने अपने ढंग से समाज को विशृंखल होने से बचाया था। शैव, वैष्णव, शाक्त आदि सम्प्रदायों के आभ्यन्तर वैमनस्य को दूर करने का जैसा स्वस्थ एवं संयत प्रयास तुलसी ने काव्य के माध्यम से किया, वैसा हिन्दी साहित्य के इतिहास में कभी

नहीं हुआ। काव्य रूपों की दृष्टि से भी उन्होंने अपनी प्रतिभा और मेधा का परिचय दिया।[१४] तुलसी का जीवन-दर्शन प्राचीन वैदिक ऋषियों एवं मुनियों के उस विराट् आदर्श से प्रेरणा ग्रहण करता है जो अभ्युदय और निःश्रेयस के संसिद्धिकारी धर्म चेतना के संरक्षण के प्रति निष्ठावान रहा है। नानापुराण निगमागसम्मत उनका 'रामचरितमानस' इसी भव्य जीवन दर्शन का मूर्तिमान बिम्ब है।[१५] तुलसीदास कवि, पंडित, सुधारक, लोकनायक और भविष्य स्रष्टा थे। इन रूपों में उनका कोई भी रूप किसी से घटकर नहीं था। यही कारण था कि उन्होंने सब और से समता की रक्षा करते हुए एक अद्वितीय काव्य की सृष्टि की जो अब तक भारत का दर्शक रहा है और उस दिन भी रहेगा जिस दिन नवीन भारत का जन्म हो गया होगा।[१६] विष्णुकान्त शास्त्री तुलसीदास के प्रगतिशील विचारों पर कहते हैं कि जिन प्रगतिशील विचारों ने तुलसीदास का समर्थन किया है, उनके लिए भी उनकी भक्ति उच्च कोटि का मानवतावाद या लोकवाद ही है। तुलसी की प्रशंसा उनके नैतिक बोध, लोकनायकत्व, पारिवारिक आदर्श, सामाजिक मंगल विधान, रामराज्य की कल्पना, उत्कृष्ट काव्य गुण आदि के लिए आधुनिक विचारक अधिक करते हैं।[१७] विष्णुकान्त शास्त्री 'श्रद्धांजलि' कविता में तुलसी जीवन दर्शन पर प्रकाश डालते हैं कि–

**जब तक जग में हिन्दी, हिन्दू, कवि, कविता।**
**तब तक गूंजेगी तेरी विमल कहानी।।**[१८]

तुलसीदास सारस्वत कवि थे– ऐसे कवि जिनकी कृति रामचरितमानस राजमहलों से लेकर दीनहीन लोगों की झोपड़ियों तक में आदर और आनन्द से पढ़ी जाती है और पढ़ी जाती रहेगी।

**जब तक नभ में रवि उग-उग कर ढल जाता**
**मुसका-मुसका कर निशि में शशि छिप जाता**
**जब तक सागर की लहरे उठ-उठ गिरतीं**
**जब तक मानव-मन में आशाएं घिरतीं**
**जब तक गंगा-यमुना में बहता पानी**
**तब-तक गूंजेगी तेरी विमल कहानी।**[१९]

इसमें सन्देह नहीं कि श्रेष्ठ साहित्य सभी युगों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपादेय होता है। उसका जीवन सन्देश कभी पुराना नहीं पड़ता। उसमें अभिव्यक्त भाव और विचार सदा प्रेरक ही बने रहते हैं। सुपठित साहित्यकार का अन्यतम वैशिष्ट्र्य यह होता है कि वह गौरवपूर्ण अतीत का आधार ग्रहण करते हुए भी वर्तमान जीवन की समस्त गतिविधियों पर सूक्ष्म दृष्टि को आलोकित कर देता है।

साहित्यकार या कवि अपने युग का मार्गद्रष्टा होता है। वह अपने युगीन समाज को दिशा बोध देता है तथा जीवन के मार्ग की कटु-विषम यथार्थताओं से परिचित कराता है। साथ ही आगे आने वाली पीढ़ियों को अपने युग का इतिहास सुनाता है। तुलसी का कलियुग आधुनिक युग पर पूर्णतय घटित होता है। तुलसी काव्य में आचरण का स्वरूप व्यावहारिकता पर आधारित हैं। तुलसी के काव्य में वर्णित वैयक्तिक आचरण, पारिवारिक आचरण एवं सामाजिक आचरण के आदर्श प्रत्येक युग के,

प्रत्येक मानव के लिए जीवनोपयोगी है। तुलसी का मत है कि व्यक्ति का आचरण धर्म नीति सम्पन्न होना चाहिए।[२०]

**है याद हमें उस युग की जब तुम आए**
**भारत-नभ पर काले बादल थे छाए**
**हिन्दू-संस्कृति की दीप-शिखा बुझती थी**
**चिर-संचित हिन्दू मर्यादा लुटती थी**
**उस विकट समय के कर्णधार!हे ज्ञानी!**
**गूंजेगी ही यह तेरी विमल कहानी।**[२१]

मध्यकालीन इतिहास पर विचार करने से ज्ञात होता है कि अन्धकार कितना गहरा था। विक्रम की सोलहवीं शती में वीरगाथा काव्यों की परम्परा नीरस हो चुकी थी। उसकी धारा छोटे-छोटे रासो काव्यों में भटक कर रह गई थी। सिद्धों और नाथों के दोहों की गति भी दूर तक न जा सकी। कबीर के निर्गुणवाद में बुद्धि को झकझोरने का मसाला तो था, पर हृदय को स्पर्श करने की शक्ति न थी। जायसी के प्रेम काव्य में हृदय का एक छोटा-सा कूतुहल अवश्य था, परन्तु व्यक्ति और समाज के जीवन का निर्माण करने वाले शक्तिशील आशावाद का उसमें पता न था। ऐसे समय आशा का नया संदेश लेकर गोस्वामी तुलसीदास प्रकट हुए, गंगा की धारा जिस प्रकार गंगाद्वार में शैलराज हिमवन्त से उतरती हुई जलराशि को समेट लाती है, उसी प्रकार तुलसीदास ने भारतीय ज्ञान और साहित्य की समस्त तत्वानुभूति को समेटकर रामायण में भरा और लोक को उसे दिया।[२२] मुगलों के आंतक के कारण जब ऐसा लग रहा था कि हिन्दू का विनाश होगा, लोगों को धर्म और संस्कृति के उदार तत्त्वों पर से विश्वास उठ रहा था, तब ऐसे संकट के काल में इस ग्रन्थ ने आस्था और विश्वास को बल दिया। समाज में विश्वास उत्पन्न करने का बहुत श्रेष्ठ कार्य रामचरितमानस ने किया और हिन्दू जीवन को बचाकर रखा।[२३]

यह भारतीय इतिहास के अत्यन्त संकट और संत्रास का काल था। भारतीय संस्कृति पहली बार ऐसी संस्कृति से टकराई थी जिसकी भाषा शस्त्र थी। जिसके लिए धर्म महज जीवन पद्धति ही नहीं, जेहाद भी थी, जो सह अस्तित्व में उतना नहीं जितना अपने अस्तित्व में विश्वास रखती थी और जिसने पारसी जैसी उन्नत सभ्यताओं को मटियामेट कर दिया था। मन्दिर, देवता और पारम्परिक जीवन की हर सुरक्षा जेहाद की भेंट चढ़ चुकी थी। यह एक ऐसी स्थिति थी जिसमें सामान्य किसान से लेकर चिन्तक तक हक्का-बक्का हो गए थे। समस्त अन्तर्विरोधों और विध्वंसवादी स्वरों को पचाकर एकजुट भाव से संकट और संत्रास को कैसे झेला जाए तथा मिटते अस्तित्व की कैसे रक्षा की जाए यही युग की सबसे बड़ी मांग थी। यही सबसे बड़ा युगधर्म था। भक्तिकाल के प्रत्येक कवि ने अपने-अपने ढंग से झंकृति को पहचाना और पृथक-पृथक ढंग की अभिव्यक्ति दी। कारक तत्व एक थे, अतः मूल स्वर भी समान रहा। तुलसी ने युगबोध को समग्र रूप में जीवित किया और समग्र रूप में ही प्रस्तुत किया।[२४] स्पष्ट है कि तुलसीदास की अमर कृति रामचरितमानस ने देश को बचा लिया, हिन्दुत्व की

रक्षा की– क्योंकि तुलसी ने डंके की चोट पर उस जालिम जमाने में जब हिन्दू जनता का उत्पीड़न, धर्मांतरण हो रहा था; हिन्दू राजा अपनी बेटियां मुगल शासकों को दे रहे थे, घोषित किया कि जिसको राम से प्रेम नहीं, उसको करोड़ों दुश्मनों की तरह समझकर त्याग दो फिर चाहे जितना तुम्हारा स्नेही प्रेमास्पद क्यों न हो। तुलसी के शब्दों में– **जाके प्रिय न राम बैदेही। तजिये ताहि कोटी बैरी सम जद्यपि परम स्नेही।**[२५]

तुलसी ने अपने युग को बहुत निकट से देखा और समझा था। तुलसीदास ने ऐसे समय में प्रत्यार्पण किया जब हिन्दू राजा पराजय स्वीकार कर विलासिता में डूबने लगे थे तथा प्रजा को ईश्वर के सहारे छोड़ दिया और प्रजा अपनी फरियाद ईश्वर से करने लगी। तब तुलसीदास ने रामचरितमानस का निर्माण किया, जिससे उस युग में मानसिक दासता की शृंखला में जकड़ी हिन्दू जाति को नया मार्ग मिला। तुलसी ने अपने युग में लड़खड़ाती हिन्दू जाति को समता, सन्तोष, दया आदि के अतीन्द्रिय और उदात्त भाव भूमि पर प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से राम के रूप में मानव के उत्कर्ष का चरम निदर्शन प्रस्तुत किया है।[२६]

**तुमने अपनों को अपनापन सिखलाया**
**तुमने अपनों को अपना पथ दिखलाया**
**तुमने अपनों को रोका 'पर' होने से**
**असली मणि तजकर नकली मणि ढोने से**
**भारत के हे कवि, गुरु, नेता लासानी**
**गूंजेगी ही यह तेरी विमल कहानी।**[२७]

महाकवि तुलसीदास परम नीतिज्ञ राजनीति के पंडित थे। तत्कालीन मुस्लिम राज्य प्रणाली एवं शासन व्यवस्था की त्रुटियों के कारण संत्रस्त पीड़ित जनता के विक्षोभ की धारावाहिक प्रतिक्रियात्मक वाणी का उद्घोष उनकी कृत्तियों का मर्म है। वैभव और ज्ञान, प्रेम और धर्म, शास्त्रनीति और शस्त्रनीति के उच्चतम शिखर पर रहने वाली हिन्दू जनता कायिक और मानसिक दासता की लौह शृंखला में आबद्ध मुक्ति के लिए तड़प रही थी, परन्तु पारस्परिक मतभेद, फूट कलह और साम्प्रदायिक मतवादों के चक्कर से त्राण का कोई मार्ग नहीं मिल रहा था। ऐसे अंधकारपूर्ण समय में तुलसीदास ने संकटग्रस्त जनता का अपनी कृतियों द्वारा उद्बोधन कर पथप्रदर्शन किया एवं मानसिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक दासता से उसकी रक्षा कर वास्तविक स्वातंत्र्य जीवन की प्राप्ति की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करने का कार्य किया।[२८] तुलसीदास के दार्शनिक दृष्टिकोण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह जीवन से विमुख नहीं हैं। वह लोकोन्मुख हैं, जीवन को सुखी और सार्थक बनाने के लिए। अनेक वैरागियों की तरह तुलसीदास मृत्यु के गीत नहीं गाते वरन् उनका दर्शन इसी जीवन, इस संसार में रहते हुए ही संसार के बन्धनों से मुक्त होने की बात कहता है।[२९]

गोस्वामी तुलसीदास ने समन्वयवाद के द्वारा भारतीय समाज में एकता ला दी, उन्होंने समाज को एक माला में पिरो दिया। उनका यह समन्वयवाद बहुमुखी है। मोटे तौर से उनके समन्वयवाद को दार्शनिक क्षेत्र, सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्र, सामाजिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में बांट सकते हैं।[३०]

दार्शनिक क्षेत्र में द्वैत और अद्वैत का समन्वय व निर्गुण-सगुण, ज्ञान-भक्ति का समन्वय, शैव-वैष्णव-शाक्त का समन्वय, शास्त्र-लोक, आदर्श-यथार्थ, सत्य और प्रेम लोक जीवन मोक्ष आदि का समन्वय। अतएव हम गोस्वामी तुलसीदास के विविध क्षेत्रों में परिव्याप्त समन्वयवाद का विश्लेषण करने पर इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इसके द्वारा उन्होनें तत्कालीन भारत में सांस्कृतिक एवम् धार्मिक एकता स्थापित की। साथ ही साथ इसके द्वारा उन्होंने सामाजिक जीवन के लिए भक्ति का सुन्दर मार्ग प्रशस्त किया। यह भक्ति मार्ग तब से लेकर अब तक भारतीय जनता का एक जीवन दर्शन बना हुआ है। इसके द्वारा समाज के लोक -परलोक दोनों जीवन सुधरे, साथ ही साथ देश की एकता की स्थापना और राष्ट्रभाषा के स्वरूप का विकास हुआ। यह समन्वयवाद आज भी भारतीय जनसमूह के लिए कल्याणकारी है। साथ ही इसी से विश्व में सहजीवन का सिद्धान्त भी विकसित हो रहा है। [३१]

**नित शैव वैष्णवों का झगड़ा बढ़ता था**
**हिन्दू मन पर तम का पर्दा पड़ता था**
**तुमने नित बल से 'मानस रवि' प्रकटाया**
**हो गई अमल हिन्दू समाज की काया**
**हम चिर-कृतज्ञ हे विनय-पत्रिका-दानी**
**गूंजेगी ही यह तेरी विमल कहानी।**

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'तुलसी समन्वयकारी थे– उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ्य और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और तत्त्वज्ञान का समन्वय, ब्राह्मण और चाण्डाल का समन्वय, पाण्डित्य और अपाण्डित्य का समन्वय।'[३३] तुलसी ने राष्ट्रीय एकता के लिए शैव-वैष्णवों का झगड़ा मिटाकर एक कर दिया। राम शिव की पूजा करते हैं और शिव राम की। तुलसी ने निगुन-सगुन, ज्ञान-भक्ति, वैष्णव-शैव में समन्वय का अचूक प्रयास किया और एकता की दृष्टि से सांसारिक रिश्ते-नाते सभी रामभक्ति से जोड़ दिये।[३४]

समरसता की भावना को सारस्वत रूप प्रदान करने के महान उद्देश्य से– दायित्वचेतना के चरम विकास को ध्यान में रखकर ही मानसकार ने असीम श्रद्धा भक्तिपूर्वक, **'सीयराममय सब जग जानी'** का विराट उद्घोष किया था। क्योंकि ऐसा मानकर चलने से कटुता, घृणा, द्वेष आदि दुर्भावनाओं के उदित होने की आशंका बिल्कुल नहीं रहेगी– लोग एक दूसरे के प्रति स्नेह सद्भाव का परिचय देंगे, जिससे समाज में सामरस्य की स्थापना भलीभान्ति की जा सकेगी।[३५] समन्वय के प्रति तुलसीदास जी का आग्रह इतना प्रबल रहा है कि उनकी साहित्य साधना में भाषा, काव्य विधा, छन्द आदि दृष्टियों से भी विविधता में एकता है। उन्होंने प्रयोजनानुसार संस्कृत और लोकभाषा दोनों का प्रयोग समान अधिकार के साथ किया है। फिर, अवधी भाषा में रामचरितमानस और ब्रजभाषा में विनय पत्रिका की रचना कर तत्कालीन दोनों काव्य भाषाओं को गौरवान्तित करने का श्रेय भी तुलसी को प्राप्त है।[३६]

तुलसी एक महान स्रष्टा और जीवन द्रष्टा कवि हैं। इन्होंने मध्ययुगीन भारत की सम्पूर्ण चेतना को काव्यमयी वाणी दी है।[३७] पूरे मध्यकाल में तुलसीदास शायद अकेले सन्त हैं जिन्होंने राम का नाम जपने पर जितना जोर दिया है, उतना ही जोर दिया राम का काम करने पर। **'राम काज लागे तव अवतारा'** राम का काम करने के लिए ही तुम्हारा जन्म हुआ। राम का काम क्या है? तुलसी ने बताया है कि श्रीराम के अवतार के अनेक हेतुओं में एक प्रमुख है सज्जनों की पीड़ा हरना।[३८] तुलसी की अनुभूति इतनी व्यापक, संवेदनशील, सत्यकेन्द्रित तथा दायित्वचेतना से परिपूर्ण है कि सभी युगों के लिए परम ग्राह्य है। सत्य, सेवा, स्नेह, संवेदनशीलता, शुचिता, एकता, जागरूकता, करुणा, त्याग, परोपकार आदि उदात भावों का अक्षुण्ण स्रोत है तुलसी साहित्य। इन दिव्य भावों को कब और किस युग को प्रयोजन नहीं पड़ेगा? वस्तुतः तुलसी की प्रासंगिकता तब तक असंदग्धि है, जब तक मानव मूल्यों, के संरक्षण का प्रश्न प्रबल बना रहेगा।[३९] महामहोपाध्याय वागीश शास्त्री कहते हैं कि– श्रीरामचरितमानस केवल आध्यात्मिक ग्रन्थ ही नहीं है, यह उत्कृष्ट कोटि का काव्यामृत भी है। जीवन के सभी दिव्य पक्षों पर इसमें पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। मानव के समग्र व्यक्तित्व को विकसित करने वाले बहुमूल्य तत्त्वरत्नों से समृद्ध है, यह सूक्ति सुधाकर है। व्यावहारिक आदर्शों की आधारशिला पर प्रतिष्ठित है श्रीराम कथा का विशाल भवन। इसलिये परिवार, समाज, प्रदेश तथा सम्पूर्ण राष्ट्र में सुख और शान्ति का प्रसार हो, इस उद्देश्य से सुदूर पूर्ववर्ती देश धर्मान्तरित होने पर भी इस अनुकरणीय परम पावन चरित का अभिनय साभिनिवेश किया करते हैं। श्री रामनाम का प्रभाव ही ऐसा आकर्षक है। श्रीराम मन्त्र के प्रभाव एवं श्रीरामचरितमानस के पारायण प्रताप से राष्ट्र को दासत्व से मुक्ति दिलायी, श्रीरामचरित के अमर गायक सन्त तुलसीदास ने।[४०]

राष्ट्रीयता का मूलभाव है राष्ट्र को सर्वोपरि समझना। जननी भूमि को स्वर्ग-अपवर्ग से भी अधिक महत्त्व प्रदान करना। तुलसीदास जी की समकालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियां अत्यन्त गंभीर थी। उन सबका एक साथ समाधान करने के लिए असाधारण व्यक्तित्व का नेतृत्व परम अपेक्षित था। वैचारिक एकता राष्ट्रीयता की सबसे बड़ी शक्ति होती है। इसलिए तुलसी ने श्रीराम के मुख से परम पावन, अत्यन्त रमणीय और अनिर्वचनीय महिमामयी के रूप में व्यंजित कराकर राष्ट्रीय अखण्डता की अवधारणा को नया विस्तार प्रदान किया।[४१] तुलसीदास ने भक्ति के माध्यम से व्यापक मानवतावाद की प्रतिष्ठापना की है। भगवान श्रीराम की स्पष्टोक्ति है कि भक्ति के मार्ग में सभी जीवों एवं सभी स्तरों के लोगों का प्रवेश है तथा भक्तिमान मुझे प्राण के समान प्रिय हैं।[४२]

**ज्योति के अवतार पूंजीभूत गरिमा।**
**चेतना साकार, संयममय मधुरिमा।**
**विनय के आगार, मर्यादा पुजारी**
**भक्ति के आधार, तुलसी, जय तुम्हारी।**

जिस प्रकार गिरिराज हिमालय में जाह्नवी, मन्दाकिनी, भागीरथी और अलकनन्दा की

धाराएं क्रमशः मिलकर मंगलकारिणी गंगा को जन्म देती हैं जिससे चराचर कृतकृत्य होता है, उसी प्रकार तुलसी के मानस के वेद, दर्शन, पुराण एवं धर्म की चार बड़ी धाराओं के एकत्र समन्वय से रामचरिमानस रूपी साहित्यिक गंगा जनता के कल्याण के लिए उत्पन्न हुई– **सुरसरि सम सब कर हित होई।**[४४] मानव मूल्यों को व्यापक स्तर पर सुप्रतिष्ठित करने के महान उद्देश्य से रचा गया रामचरितमानस सचमुच महाकाव्य लेखन का गौरव शिखर है।[४५]

**संदर्भ ग्रन्थः**


१. भागीरथ मिश्र, महाकवि तुलसीदास युग संदर्भ, भूमिका, पृ. क।
२. वही, पृ. ६।
३. इन्द्रजीत पाण्डेय, जुगल किशोर (सं.), तुलसीदास चिन्तन अनुचिन्तन, पृ. ६८।
४. विष्णु कान्त शास्त्री, जीवन पथ-पथ पर चलते चलते, पृ. ४४।
५. उदयभानु सिंह, तुलसी काव्य मीमांसा, पृ. ४००।
६. सीताराम झा 'श्याम' तुलसीदास साहित्य और दायित्वदर्शन, पृ. २०४
७. इन्द्रजीत पाण्डेय, जुगल किशोर (सं.), तुलसीदास चिन्तन अनुचिन्तन, पृ. ७४।
८. त्रिभुवन सिंह, तुलसी : सन्दर्भ और समीक्षा पृ. ५३८।
९. विद्यानिवास मिश्र, तुलसी मंजरी, पृ. ८७।
१०. वही, पृ. ८७।
११. भागीरथ मिश्र, महाकवि तुलसीदास युग संदर्भ, पृ. २१६।
१२. शिव कुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य, युग और प्रवृतियां, पृ. २०८-२०९।
१३. विजयेन्द्र स्नातक, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. ६७।
१४. नागेन्द्र, हिन्दी साहित्य इतिहास, पृ. २७१-७२।
१५. देवकी नन्दन श्रीवास्तव, तुलसी साहित्य विमर्श, पृ. १६।
१६. मोतीलाल द्वारी, तुलसी एक मूल्यांकन, पृ. २।
१७. इन्द्रजीत पाण्डेय, जुगल किशोर (सं.) तुलसी चिन्तन : अनुचिन्तन, पृ. १३८-३९।
१८. विष्णुकान्त शास्त्री, जीवन पथ पर चलते-चलते, पृ. ४३।
१९. वही, पृ. ४३।
२०. चरणसखी शर्मा, तुलसी काव्य में धर्म व आचरण का स्वरूप, पृ. २६७।
२१. विष्णुकान्त शास्त्री, जीवन पथ पर चलते-चलते, पृ. ४३।
२२. कला गुंज, गोस्वामी तुलसीदास अंक, जुलाई २००१, पृ. १५।
२३. कौशलेन्द्र, अविस्मरणीय पूजनीय श्री गुरुजी, पृ. २४।
२४. त्रिभुवन सिंह, साहित्यिक निबंध, पृ. १०२८।
२५. कलाकुंज गोस्वामी, तुलसीदास अंक, जुलाई २००१, पृ. २१।
२६. चरणसखी शर्मा, तुलसी काव्य में धर्म व आचरण का स्वरूप, पृ. १४८।
२७. विष्णुकान्त शास्त्री, जीवन पथ पर चलते चलते, पृ. ४३।
२८. राजाराम रस्तोगी, तुलसीदास जीवनी और विचारधारा, पृ. २०४।

२९. इन्द्रजीत पाण्डेय, जुगल किशोर (सं.), तुलसीदास चिन्तन अनुचिन्तन, पृ. ५८।
३०. भागीरथ मिश्र, महाकवि तुलसीदास युग संदर्भ, पृ. १५०।
३१. वही, पृ. १५८-५९।
३२. विष्णुकान्त शास्त्री, जीवन पथ पर चलते चलते, पृ. ४४।
३३. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ. ८५।
३४. चरणसखी शर्मा, तुलसी काव्य में धर्म एवं आचरण का स्वरूप, पृ. १०२।
३५. सीताराम झा 'श्याम' तुलसीदास : साहित्य और दायित्व दर्शन, पृ. १६३।
३६. वही, पृ. १६५।
३७. शिवकुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृतियां, पृ. २१२।
३८. त्रिभुवन सिंह, तुलसी : सन्दर्भ और समीक्षा, पृ. ४१७।
३९. सीताराम झा 'श्याम', तुलसीदास : साहित्य और दायित्व दर्शन, पृ. २११।
४०. वागीश शास्त्री, शाश्वत काव्य की आत्मा, पृ. ११४।
४१. सीताराम झा 'श्याम' तुलसीदास : साहित्य और दायित्व दर्शन, पृ. १६६-१६७।
४२. सीताराम झा 'श्याम' तुलसीदास : साहित्य और दायित्व दर्शन, पृ. १६५-६६।
४३. विष्णुकान्त शास्त्री, जीवन पथ पर चलते चलते, पृ. ४४।
४४. कलाकुंज पत्रिका, गोस्वामी तुलसीदास अंक, जुलाई २००१, पृ. १३।
४५. सीताराम झा 'श्याम', तुलसीदास : साहित्य और दायित्व दर्शन, पृ. २२४।

**ब्लाक न. ए, सैट न. २**
**पत्रकार विहार, संकटमोचन**
**शिमला - १७१०१०**

कृषि दर्शन ✍

# प्राचीन जन और कृषि तन्त्र

**डॉ. रामविलास शर्मा**

बहुत से विद्वानों के मन में यह बात मजबूती से जमी हुई है कि ऋग्वेदकालीन आर्य घुमन्तु जीवन बिताते थे। जहां-तहां वे गांव में रहने लगे थे पर उनका मुख्य धन्धा पशुपालन था। जो लोग यह मानते हैं कि आर्यों ने बाहर से आकर यहां की एक विकसित सभ्यता का नाश किया, उनके लिए यह सोचना स्वाभाविक है कि आक्रमणकारी आर्य बर्बर जीवन बिता रहे थे। **भारतीय विवाह संस्था का इतिहास** में विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े ने लिखा है कि सैकड़ों-हजारों साल तक जंगलों में भटकने के बाद आर्यों की समझ में आया कि आग जलाकर अपनी रक्षा की जा सकती है। वन में उन्होंने पेड़ों की रगड़ से आग उत्पन्न होते देखा। आग के सामने पशुओं को भागते हुए भी उन्होंने देखा। इससे उन्होंने कल्पना की कि हम भी यदि आग जलाएं जो पशुओं को भगा सकते हैं। आग बहुत ही मूल्यवान वस्तु थी, इसलिए वे उसे छिपाकर गुफा में रखते थे। ऋग्वेद में अग्नि को **गुहाहितः** कहा गया है। इसकी व्याख्या करते हुए राजवाड़े ने बताया कि ऋषि अग्नि को गुफाओं में रखते थे, इसलिए उसे ऐसा कहा गया है। फिर वे झोपड़ियों में रहने लगे, तब गड्ढे खोदकर उनमें आग रखते थे। इन गड्ढों को वे कुण्ड कहते थे। आग जलाकर वे यज्ञ करते थे। यज्ञ का मुख्य उद्देश्य सन्तान उत्पन्न करना था। यह कार्य वे सामूहिक रूप से करते थे। राजवाड़े ने आगे लिखा है– ''प्रजापति यज्ञ का आयोजन करके पड़ोस के जवानों को एकसाथ बुलाकर अपने समूह की स्त्रियों से उनका समागम करवाकर अपनी स्त्रियों के द्वारा अधिक से अधिक प्रजा उत्पन्न करवाते थे, उस प्रजा की देखभाल करते थे और अपना मनुष्यबल बढ़ाते थे। शत्रुओं को जीतकर और उनको दास बनाने पर प्रजा जितनी बढ़नी चाहिए, उतनी बढ़ नहीं पाती थी। अतैव यह यज्ञ के बहाने लोगों को एकत्रित करके बच्चे उत्पन्न करने की प्रजापतियों की पद्धति थी।'' (पृष्ठ १२८-१२६) इस विवरण से स्पष्ट है कि प्रजापति जिस तरह का जीवन बिता रहे थे, वह अर्द्धसभ्य कबीलों के जीवन से भिन्न नहीं था।

ऋग्वेदिक आर्य पुस्तक में राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है : ''मोएञ्जोदड़ो और हड़प्पा तथा ऐसे कितने नगरों के संहार के बाद सप्तसिंधु की विजित भूमि को पशुपालक आर्य-जनों ने आपस में बांटकर उसे गोचर भूमि में परिणत कर दिया।'' (पृष्ठ १७) इतिहासकार पुसालकर आर्यों की सभ्यता को इससे अधिक विकसित मानते हैं। उनके अनुसार आर्य खेती करते थे, कुछ उद्योग धंधों का विकास उन्होंने किया था। फिर भी मुख्यतः वे पशुपालक समाज के लोग थे। (वेदिक एज, पृष्ठ ३६५)

ऋग्वेद में एक जुआरी है - जुआ खेलता है, पछताता है, फिर भी खेलता है। कवि उससे

कहता है- **कृषि कृषस्व**। (१०.३४.१३) वह उससे गाय चराने के लिए नहीं कहता, लूटमार के लिए नहीं कहता, खेती करने के लिए कहता है। मानना चाहिए कि खेती आम लोगों का धंधा होगी, तभी उसने जुआरी से ऐसा कहा। एक पूरा सूक्त क्षेत्रपति पर लिखा गया है। कवि कहता है – ''मित्र के समान हितकारी क्षेत्रपति की सहायता से हम खेतों को जोतें। वह क्षेत्रपति देव हमें गाय और घोड़ों को पुष्ट करने वाला धन प्रदान करे, तथा ऐसे धन में हमें सुखी करे।'' (४.५७.१) आगे कवि कहता है : ''घोड़े आदि वाहन हमारे लिए शुभकारी हों, मनुष्य हमारे लिए शुभकारी हों, (**लाङ्गल शुनं कृषतु**) हल सुखपूर्वक हमारे खेतों को जोतें।'' (४.५७.४) हल के लिए यहां लाङ्गल शब्द का प्रयोग किया गया है। आगे कहा गया है– **फालाः नः भूमिं शुनं वि कृषन्तु,** ''हल के फाल हमारी भूमि को सुखपूर्वक जोतें।'' (४. ५७.८) हल में फाल लगे हुए हैं और कवि चाहता है कि इन फालों से जमीन अच्छी तरह जोती जाए। कृषिकर्म में देवता भी हाथ बंटाते हैं। कवि अश्विनीकुमारों से कहता है – **वृकेण यवं कर्षथः**, हल से जौ की भूमि जोतते हो। (८.२२.६) **कर्षथः** का मूल अर्थ होगा - खीचंते हो। इसी कर्षण के कारण खेती के काम को कृषि कहा गया। यहां **कर्ष** रूप स्पष्ट दिखाई देता है। कृषि से **कृष्टि** शब्द बना। इसका अर्थ–विस्तार बहुत रोचक है। मोनियर विलियम्स ने सुझाया है कि कृष्टि का मूल अर्थ था–जोती हुई भूमि। फिर अर्थ–विस्तार हुआ और इस शब्द का प्रयोग उस भूमि के लिए हुआ जहां लोग रहते थे। आगे चलकर यह शब्द उन लोगों के लिए प्रयुक्त होने लगा जो इस भूमि पर रहते थे, और अन्त में कही के भी आदमी हों, उनके लिए **कृष्टि** शब्द का प्रयोग होने लगा। अग्नि के लिए कहा है– **कृष्टीनां मध्ये इद्धः**, मनुष्यों के बीच अग्नि प्रदीप्त होती है। (५.१.१६) यहां कृष्टि में किसानवाला भाव क्षीण हो गया है, मनुष्यों के बीच अग्नि प्रज्वलित होती है, यह बात कही गई है। इसी तरह इन्द्र **कृष्टीनां राजा** है। (४.१७.५) ऋग्वेद में पंचजनों का बहुत बार उल्लेख हुआ है। उन्हीं के समानान्तर **पंच कृष्टयः** शब्दबंध का प्रयोग हुआ है। (१०.६०.४)

किसी समय कर्ष का प्रतिरूप चर्ष प्रचलित था। उससे शब्द बना **चर्षणि**। यह शब्द भी मानव-वाचक हो गया, किसान का भाव पूरी तरह तिरोहित हो गया। इन्द्र के लिए कहा है – **जगतः चर्षणीनां,** संसार के सभी मनुष्यों का राजा है। (१.३२.१५)

इससे मिलती-जुलती स्थिति **क्षिति** शब्द की है। क्षिति वह भूमि है जहां मनुष्य निवास करते हैं। अग्नि के लिए कहा गया है **ध्रुवांसु क्षिति दमे नित्यं इद्धम्,** निश्चित स्थानों में घर के भीतर नित्य अग्नि प्रज्वलित होती है। उस अग्नि की लोग उपासना करते हैं। (१.७३.४) **क्षितिषु** के साथ **दमे** शब्द का प्रयोग किया गया है। यदि **क्षिति** का अनुवाद बस्ती करें और **दमे** का घर, तो दोनों का संबन्ध समझ में आ जाएगा। ये बस्तियां स्थायी है, इसलिए ध्रुव शब्द का प्रयोग किया गया है। स्थायी बस्तियों में घर बने हुए हैं, उन घरों में अग्नि प्रज्वलित है और लोग पूजा करते हैं। फिर किसी भी भूमि के लिए क्षिति का शब्द का प्रयोग होने लगा - **क्षितिर्न पृथ्वी,** क्षिति के समान चौड़ी। (१.६५.३) **पृथ्वी** शब्द यहां धरती

के लिए नहीं है, विशेषण है। क्षिति के समान कोई चीज चौड़ी है। फिर क्षिति शब्द का व्यवहार उन लोगों के लिए होने लगा जो कहीं रहते थे। जैसे **पंच कृष्टयः** का प्रयोग हुआ, वैसे ही इन्द्र के लिए कहा गया है कि **पंच क्षितीनाम्,** पंच जनों के राजा हैं। (१.७.६)

इसी तरह **क्षेत्र** शब्द का अर्थ-विकास रोचक है। **क्षेत्र** में मूलतः खेती करने का भाव नहीं था, निवास का भाव था। अग्नि के लिए कहा– **तमसि क्षेत्रसि,** तुम अंधकार में रहते हो। (१०.५१.५) कवि विष्णु के लिए कहता है, ''यह विष्णु देव इस पृथिवी को **क्षेत्राद्य** निवास करने के लिए मनुष्यों को देने की इच्छा से पराक्रम करता रहा।'' (७.१००.४) यहां क्षेत्र में निवास वाला मूल अर्थ बना हुआ है। फिर किसी भी स्थान के लिए क्षेत्र शब्द का प्रयोग होने लगा। कवि कहता है, सरस्वती को छोड़कर हमें अन्य क्षेत्रों में न जाना पड़े। (६.६१.१४) यहां **क्षेत्राणि** शब्द किसी भी स्थान को सूचित करता है। आकाश के लिए कहा गया है कि वह सूर्य का विशाल क्षेत्र है। (५.४५.६) आकाश में कुछ नहीं है, शून्य है, लेकिन उसके लिए क्षेत्र शब्द का व्यवहार किया गया है। अवश्य ही जो खेती की भूमि है, उसके लिए भी क्षेत्र शब्द का व्यवहार होता था, **क्षेत्रपति** वाले सूक्त से यह स्पष्ट है किन्तु उस का मूल अर्थ निवास से संबन्धित है। कृष्टि, क्षिति जैसे शब्द निवास का अर्थ छोड़कर सामान्य जनों के लिए प्रयुक्त होने लगे, तो इसमें शताब्दियां लगी होंगी। इसी तरह क्षेत्र शब्द निवास का अर्थ छोड़कर खेती वाली जमीन के लिए प्रयुक्त होने लगा, इसमें भी बहुत समय लगा होगा। इन शब्दों के अर्थ-परिवर्तन से पता चलता है कि आर्यों ने शताब्दियों तक रहकर यहां खेती करते हुए अपनी सभ्यता का विकास किया था।

क्षेत्र के अलावा खेती की जमीन के लिए **उर्वरा** शब्द का प्रयोग भी होता था। कहीं-कहीं **उर्वरा** और **क्षेत्र** दोनों शब्दों का प्रयोग हुआ है। यह संभव है कि वहां क्षेत्र निवास की भूमि और उर्वरा खेती की भूमि के लिए प्रयुक्त हुए हों। (४.३८.१) एक शब्द था– **अप्नस्वती**। जो भूमि उपजाऊ होती थी, उसके लिए इस शब्द का प्रयोग होता था, जो भूमि ऊसर थी, उसके लिए **आर्तना** शब्द का प्रयोग होता था। (१.१२७.६) अग्नि के लिए कहा गया है कि वह उर्वरा भूमि को जलाकर खिल्या बना देती है। **खिल्या** अर्थात् बंजर भूमि। (१०.१४२.३) कृषितन्त्र का विकास करने वालों के लिए भूमि का यह भेद स्वाभाविक है।

किसान खेती की भूमि हल-बैल से कई बार जोतते थे– **गौभिः यवं न चकृषत्, गौभिः** अर्थात् बैलों के द्वारा और **यव** शब्द यहां जौ की खेती के लिए प्रयुक्त हुआ है, **चकृषत्** में बार-बार कर्षण करने अथवा हल चलाने का भाव है। (१.२३.१५) किसान हल चलाते हुए बीज बोता है। (१.११७.२१) जब फसल तैयार हो जाती है, तब तक हंसिया लेकर जौ के पौधे समेटकर उन्हें काटता है। काटते समय पौधों को अपनी मुट्ठी में बांध लेता है। (८.७८.१०) खेत काटते समय इस बात का ध्यान रखता है कि व्यवस्थित ढंग से उसे काटे। किसान **अनुपूर्वं,** क्रमशः व्यवस्थित ढंग से, **दान्ति** (हंसिये) से काटते

हैं। (१०.१३१.२) फिर खलिहान में ले जाकर पूले रखते हैं। पूले के लिए शब्द है **पर्ष** और खलिहान के लिए शब्द है **खल**। वहां उन्हें कूट-पीटकर दाने निकालते हैं। (१०.४८.७), सूप से पछोर कर अनाज साफ करते हैं। सूप के लिए शब्द है **तितउ।** (१०.७१.२) जौ एक जगह इकट्ठा हो जाता है, तब उसे घर लाकर कोठे में भर देते हैं। कोठे के लिए शब्द है **ऊर्दर।** (२.१४.११)

खेती के लिए वैदिक जन मुख्यतः वर्षा पर निर्भर थे। वर्षा से लगभग सभी देवताओं का संबंध है लेकिन सबसे ज्यादा संबंध इन्द्र और मरुतों का है। मैकडनल ने वैदिक देवतन्त्र पर अपनी पुस्तक में लिखा है कि ऋग्वेद में सबसे ज्यादा सूक्त इन्द्र पर रचे गए हैं। यदि उन सूक्तों को भी मिला लिया जाए जिनमें इन्द्र का नाम आया है, तो ऐसे सूक्तों की संख्या बहुत बड़ी हो जाएगी। इन्द्र का सबसे बड़ा कार्य जिसकी बार-बार प्रशंसा की गई है वृत्र का वध है। वृत्र के बारे में मैकडनल ने **वैदिक मिथौलॉजी** में बहुत सही कहा है कि वह सूखे का मुख्य दानव है (द चीफ डेमन ऑफ ड्राउट)। (पृष्ठ ५८) वैदिक जनों को सर्वाधिक भय इस बात से था कि पानी न बरसा, सूखा पड़ा, तो फसल मारी जाएगी। इद्र ने सूखे के दानव वृत्र को जीता, तब वर्षा संभव हुई। इसलिए ऋषि उनकी बार-बार स्तुति करते हैं। युद्ध के देवता वह गौण रूप में हैं, मुख्यतः वह वर्षा के देवता है। एक दानव का नाम है शुष्ण। मैकडनल ने कहा है कि यह संभवतः शुष् सर्प के फुफकारने, जोर से सांस लेने अथवा सुखने-सुखाने का अर्थ देने वाली क्रिया से बना है। कवियों की कल्पना में ये दानव सर्पों के रूप में थे, इसलिए इनका फुफकारना या जोर से सांस लेना स्वाभाविक है। शुष्ण को मैकडनल ने **'डेमन ऑफ ड्राउट'** - सूखे का दानव कहा है। (पृष्ठ १६१)

आर्य जन गांव में रहते थे। गांव के अलावा वह दुर्ग बनाकर उनमें भी रहते थे। इन्हें पुर कहते थे। वे कल्पना करते थे कि दानव भी दुर्गों में रहते हैं, इसलिए इन्द्र दुर्ग तोड़कर जल प्रवाहित करते हैं। इन्द्र ने शुष्ण के दुर्ग तोड़े, मेघ से जल प्रवाहित किया। (१.५१.११) ये दुर्ग आकाश में थे। मेघों को देखकर कवि कल्पना करते थे कि ये उड़ते हुए दुर्ग हैं। इसलिए एक मन्त्र में **(चरिष्णवं पुरं)** गतिशील दुर्ग की बात कही गई है। वह शुष्ण का दुर्ग है। इन्द्र ने उसे तोड़ा। (८.१.२८) मैकडनल ने लिखा है कि बादलों को हमेशा उनके **अभ्र** आदि नामों से नहीं याद किया जाता। **गौ**, (गाय), **ऊधर**(थन), **उत्स** (झरना), **कवन्ध** (कलश) आदि शब्दों से बादलों का उल्लेख किया जाता है। इनसे भी अधिक पर्वतों के रूप में उन्हें स्मरण किया जाता है। आगे चलकर यह कथा प्रचलित हुई कि पहले पर्वत उड़ा करते थे, इन्द्र ने उनके पर कतर दिए, तब वे अचल हो गए। बादल पर्वत जैसे थे, आकाश में उड़ते थे, पर्वतों के उड़ने की कल्पना यहीं से पैदा हुई। इन्द्र इन पर्वतों में रहने वाले दानवों का नाश करते थे। इन्द्र ने पर्वत तोड़े और वहां की गायें मुक्त कीं। (८.४५.३०) मैकडनल ने बिल्कुल ठीक लिखा है, बादलों में दुर्ग तोड़ने के कारण इन्द्र को **पूर्भिद्** (पुर तोड़ने वाला) कहा गया है। इन्द्र कोश से धरती को सींचे। (१.१३०.२) यहां कोश शब्द बादल के लिए प्रयुक्त हुआ है। मरुत् **ऊधः** - थनों से जल

दूहते हैं और पृथ्वी **पय** द्वारा तृप्त होती है। (१.६४.५) यहां **ऊधः** बादल हैं। वरुण **कवन्ध** (कलश) द्वारा पानी गिराकर धरती में बोया हुआ जौ सींच देते हैं। (५.८५.३) यहां कवन्ध बादल है। सोम **उद्रिणं कवन्धम्,** पानी से भरे हुए कवन्ध नीचे की तरफ उलट देते हैं। (६.७.४.७) यहां पानी से भरा हुआ कवन्ध स्पष्ट ही बादल है। मरुतों ने उत्स से गोतम के खेत सींचे। यहां उत्स शब्द बादल के लिए है। (१.८५.११)

मित्र और वरुण बादलों को इकट्ठा करते हैं, उनसे सूर्य ढंक जाता है। **वृष्ट्या अभ्रेण गूहथः वृष्ट्या,** जल से भरे हुए **अभ्रेण** (बादल) से **गूहथः -** सूर्य को ढंक देते हैं। (५.६३.४) यहां बादल के लिए सीधे **अभ्र** शब्द का प्रयोग हुआ है। वह जल से भरा हुआ है, इसलिए उसके पहले **वृष्टि** शब्द का उल्लेख है। इस मन्त्र में **पर्जन्य** शब्द का व्यवहार भी हुआ है। एक मन्त्र में इन्द्र के लिए कहा गया है कि वह जलों के स्वामी (**वृष्टेः ईशे**) हैं और जलों की वृष्टि करते (**अपां वृषा**) हैं। (६.७४.३) इन्द्र के साथी मरुत् हैं। उनके लिए कहा गया है कि **वृष्टिं वर्षयथ,** पानी बरसाते हो और तुम्हारी गायों का दूध कभी सूखता नहीं है (५.५५.५); यहां (**धेनवः**) गायें स्पष्ट ही बादल हैं। बृहस्पति के लिए कहा गया है कि उन्होंने शंतनु के लिए जल बरसाया था। (१०.९८.३) अग्नि तक से प्रार्थना की गई है कि वह जल बरसाएं। (१०.९८.१०) वरुण देव ने आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष के लिए **कवन्धम्,** अर्थात् मेघ का मुंह नीचे किया; वह धरती को उपजाऊ बनाते हैं जैसे वृष्टि से जौ लहलहाते है। (५.८५.३)

वैदिक जनों के लिए जौ की खेती मुख्य है। वर्षा की सबसे अधिक जरूरत इसी तरह की खेती के लिए होती है। अग्नि के लिए कहा गया है कि वह देव हवि से वैसे ही प्रसन्न होते है जैसे वृष्टि होने पर जौ की खेती प्रसन्न होती है। (२.५.६) पर्जन्य, आकाश से दिव्य वृष्टि करके, जौ की खेती को बढ़ाता है। (१०.४३.७) उपमा देते हुए कवि बार-बार जौ की याद करते हैं। अग्नि वैसे ही सुन्दर है जैसे पके हुए जौ (१.६६.२) इन्द्र शत्रुदल को वैसे ही काट डालते हैं जैसे किसान जौ के खेत काटते हैं। (१.१७६.२)सोम वैसे ही स्वादिष्ट है जैसे यव। (८.२.३) कवियों की वाणी से इन्द्र का महत्त्व वैसे ही बढ़ता है जैसे वृष्टि से जौ बढ़ता है। (१०.४३.७) वैदिक जन जो सम्पति चाहते हैं, उसमें घोड़े हैं, गायें हैं और उनके साथ जौ हैं। इन्द्र से वे कहते हैं कि **अश्वावत्, गोमत् यवमत्** तुम जो धन देते हो, वह अश्वों से युक्त है, इसमें गायें हैं और यव हैं। (८.९३.३)

वैदिक जन मांसाहारी थे, यह सिद्ध करने के लिए मैकडनल और कीथ ने **वैदिक इंडेक्स** में ऋग्वेद के एक मन्त्र का हवाला दिया है। (८.४३.११) उनके अनुसार उस मन्त्र में अग्नि को गाय, बैल खाने वाला कहा गया है। कवि अग्नि की वन्दना करता है, **उक्षान्नाय, वशान्नाय, सोमपृष्ठाय वेधसे - अग्निदेव उक्षान्न हैं, वशान्न है** और **सोमपृष्ठ** हैं। सोम का रस लेकर वह देवों के पास जाते हैं, इसलिए **सोमपृष्ठ** हैं। **उक्षान्नाय** – उसका एक अर्थ है भीगा हुआ। अग्नि रस-सिंचित अन्न लेकर देवों पास जाते हैं, इसलिए भी उन्हें **उक्षान्नाय** कहा जा सकता है। **उक्षा** का अर्थ बैल भी है और **वशा** का अर्थ गाय है।

लेकिन उक्षा और वशा दोनों के आगे अन्न शब्द जुड़ा हुआ है। आम तौर से जहां अन्न शब्द का व्यवहार होता है, वहां आशय निरामिष भोजन से ही होता है। मांस शब्द का अलग व्यवहार होता है। इस मन्त्र का अर्थ सातवलेकर ने इस प्रकार किया है : ''अन्न को रस से सिंचित करने वाले तथा अन्न को रमणीय बनाने वाले, सोमपीठ वाले जगत्‌विधाता अग्नि की स्तोत्रों से उपासना करते हैं।'' (८.४३.११) एक मन्त्र में मरुतों को **उक्षणः** कहा गया है। (१.६४.२) वे जल से धरती सींचते हैं, इसलिए **उक्षणः** शब्द का प्रयोग उनके लिए सार्थक है। मरुतों के साथ **उक्षन्ति** क्रिया का प्रयोग किया गया है, वह भी ध्यान देने योग्य है। **रजांसि पुरु पयसा उक्षन्ति** – धरती को बहुत से जल से सींचते हैं। (१.१६६.३) **उक्षा** में सींचने का भाव मौजूद है, इसलिए **उक्षान्न** का अर्थ **बैल का मांस करने के बजाय रस-सिंचित अन्न करना अधिक उपयुक्त होगा।**

मांस के प्रसंग में मैकडनल और कीथ ने बिल्कुल सही कहा है कि मनुष्य जो खाता है, देवों को वही अर्पित करता है। (**वैदिक इंडेक्स**, खंड २ पृष्ठ १४७) उन्होंने ऋग्वेद के एक मन्त्र का हवाला देते हुए कहा है कि इसमें विवाह प्रथा का वर्णन है और विवाह के समय गायें मारी जाती थी। (**वैदिक इंडेक्स**, खंड १, पृष्ठ १०) **आघासु गांवः हन्यन्ते,** यहां **गावः** का अर्थ बैल भी हो सकता है। ग्रिफिथ ने अपने अनुवाद में बैल अर्थ ही किया है : In Magha days are oxen slain (१०.८५.१३), मघा के दिनों में बैल मारे जाते हैं किन्तु मैकडनल और कीथ ने गावः का अर्थ गाय करना ठीक समझा। इसके सिवा हन्यन्ते के दो अर्थ हैं – जान से मारना और पीटना। ग्रिफिथ ने हन्यन्ते का अर्थ जान से मारना किया है किन्तु उन्होंने विल्सन का अर्थ भी दिया है जिसके अनुसार गायों या बैलों को खेदा जाना था। Are whipped along, चाबुक या डंडे से उनको आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया जाता था। सातवलेकर ने अनुवाद किया है : **विदाई में दी गई गायों को डंडे से हांका जाता है।** यह अर्थ विल्सन की व्याख्या से मिलता-जुलता है।

यहां यह स्मरण करना उचित होगा कि **ऋग्वेद** में बार-बार गाय को **अघ्न्या** कहा गया है। जो नहीं मारी जाती वह अघ्न्या है। एक कवि अग्नि को संबोधित करते हुए कहता है – **नहि मे अस्ति अघ्न्या**– मेरे पास गाय नहीं है जिसके दूध से मैं तुम्हारी उपासना करूं। (८.१०२.१९) दूध अग्नि का सामान्य भोजन है। इसीलिए कवि कहता है कि गाय नहीं है, इसलिए दूध तुम्हें कैसे चढ़ाऊँ? कवि इन्द्र से कहता है कि गायें अपना दूध सोम के साथ मिलाकर तुम्हें देती हैं। यहां भी गाय कि लिए अघ्न्या शब्द का प्रयोग किया गया है। (९.१.९) देवताओं से गाय का विशेष संबंध है। इन्द्र को अघ्न्यानां **पतिम्** कहकर संबोधित किया गया है। (८.६९.२) वह गायों के रक्षक है, इसलिए उनके भक्षक नहीं हो सकते। **अघ्न्या,** गाय अश्विनी देवों को दूध देती है। (१.१६४.२७) गायें लगभग देवत्व प्राप्त कर लेती हैं। वे सोम की स्तुति करती हैं। (९.८०.२) सातवलेकर ने स्तुति शब्द का प्रयोग किया है। ग्रिफिथ ने अपने अनुवाद में केवल उनके रंभाने का जिक्र किया है। वे चाहे रंभाएं, चाहे स्तुति करें, यह शब्द वे

सोम को प्रसन्न करने के लिए करती हैं। अग्नि को मांस नहीं चढ़ाया जाता किन्तु जो राक्षस कच्चा माांस खाते हैं, उनके लिए अग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह उन्हें जला दें। (१०.८७.२) शव जलाए जाते थे, वह अग्नि मांसभक्षक हुआ। किन्तु इस अग्नि के लिए कवि कहता है, ''मैं (**क्रव्यादं अग्निं दूरं प्र हिणोमि**) मासं खाने वाले अग्नि को दूर हटाता हूं। पापवाहक अग्नि यमराज के पास जाए। यहीं यह एक दूसरा सर्वप्रसिद्ध सर्वज्ञ अग्नि है, वह देवों के पास हवि ले जाए।'' (१०.१६.९) इस तरह दो अग्नि हुए। एक अग्नि देवों के पास हवि ले जाते हैं, दूसरा शवों को जलाने वाला अग्नि है। कवि उसे दूर रखना चाहता है। कीथ और मैकडनल ने यह मत व्यक्त किया है कि दाहक्रिया सम्पन्न करने के लिए गाय मारना आवश्यक था। यहां भी उन्होंने गो शब्द का गाय अर्थ ही किया है। किन्तु ग्रिफिथ ने अपने अनुवाद में गाय-बैल किसी का जिक्र नहीं किया है। केवल flesh (मांस) का उल्लेख किया है। Shield thee with flesh against the flames of Agni - मृत पुरुष के शरीर को मांस से ढक दिया जाए। (१०.१६.७) गो शब्द का अर्थ गाय-बैल के अलावा दूध से लेकर चमड़े तक कोई भी चीज हो सकती है। सातवलेकर ने अर्थ किया है– हे मृत! तुम अग्नि का कवच जो वेदी है उसे गोचर्म से आच्छादित करो।'' यहां गोचर्म गाय का चमड़ा हो सकता है, बैल का चमड़ा भी हो सकता है। शव को मांस से ढका जाए, यह आवश्यक नहीं है। सातवलेकर के अनुसार मृत पुरुष का मांस ही उसे आच्छादित करेगा, ''तुम अपने मेद और मांस से आच्छादित होओ।'' (१०.१६.७)

दाहक्रिया की एक विशेष रीति सम्पन्न करने के लिए यदि किसी पशु के मांस या चमड़े से शव को ढक दिया जाता था तो इससे सिद्ध नहीं होता कि साधारणतः गाय और बैल की बलि देकर वैदिक जन अग्नि की पूजा करते थे।

**उक्षान्नाय वशान्नाय** आदि के आधार पर मैकडनल और कीथ ने अग्नि को गाय, बैल खाने वाला कहा है। **ऋग्वेद** में अनेक बार **अन्न** शब्द का प्रयोग हुआ है। कहीं भी उसका संबन्ध मांस से नहीं दिखाई देता। इसके प्रतिकूल देवों की हवि और उनके भोजन का उल्लेख करते हुए बार-बार घी-दूध, यव और इनसे बनी चीजों का जिक्र किया गया है। अग्नि को तीन बार घी की हवि दी जाती है। वही उनका अन्न है। **सस्मिन अहन् ते त्रिः अन्नं कृणवत्।** ग्रिफिथ ने इसका अनुवाद किया है **Thrice this day offers thee food.** (४.१२.१) दिन में तीन बार तुम्हें यह अन्न भेंट किया जाता है। अंग्रेजी में 'फूड' अन्न शब्द का पर्यायवाची है और यह अन्न घी है। यह घी चम्मच से दिया जाता था। सातवलेकर के अनुवाद में – ''जो स्रुक् को घी से भरकर तैयार करके तुझको प्रदीप्त करता है'' ग्रिफिथ के अनुवाद में स्रुक **ladle** है। लेडल या स्रुक में घी ही रखा जाएगा, रक्त या मांस नहीं भरा जाएगा। अग्नि के लिए कहा है **घृतं अन्नं** (१०.६९.२), घी ही उसका अन्न है। इसी तरह इन्द्र को सोम पीने के लिए आमंत्रित करते हुए कवि कहता है, **सः ते अन्नम्।** (६.४१.३) ग्रिफिथ ने यहां भी अन्न का अनुवाद फूड किया है। **अन्न का संबन्ध सोम से है, घी से है, कहीं भी उसका संबन्ध मांस से नहीं है।**

वैदिक जन जौ की खेती करते हैं, स्वयं जौ खाते हैं और देवों को खिलाते हैं। हर तरह की भूख से पार लगने का मुख्य साधन जौ है। **यवेन विश्वां क्षुधं तरेम,** जौ से हम हर तरह की भूख से पार पाते हैं। (१०.४२.१०) अनेक लोगों के बीच बैठा हुआ कवि अपने लिए कहता है, **अहम् यवादः** मैं जौ खाने वाला हूं। (१०.२७.६) वायु की उपासना करता है, उसके लिए जौ पकाए जाते हैं, **यवः पच्यते**। (१.१३७.८) दूध में जौ मिलाए जाते हैं, गाय के दूध में सोम मिलाया जाता है। **गवाशिरं, यवाशिरं** - गाय के दूध में मिलाया हुआ सोम, जौ के साथ मिलाया हुआ सोम, ये इन्द्र को भेंट किए जाते हैं। (३.४२.७) मैकडनल और कीथ का कहना है कि गवाशिर और यवाशिर का प्रयोग बहुत बार हुआ है। ये दोनों सोम के विशेषण हैं। (वैदिक इंडेक्स, खंड १, पृष्ठ २२२, खंड २, पृष्ठ १८८)

ऋग्वेद में **धाना** और **धान्य** शब्दों का प्रयोग भी अनेक बार हुआ है। मैकडनल और कीथ ने लिखा है कि धाना नियमित रूप से सोम के साथ मिश्रित किए जाते थे और कभी - कभी आर्यजन इन्हें भूनकर भी खाते थे। **थाना भृज्जाति** - यह भुना हुआ अनाज आर्य खाते थे और देवताओं को भेंट करते थे। सोम के साथ इन्द्र को भूने हुए अन्न के दाने देते थे। (४.२४.७) गृहस्थ इन्द्र को प्रतिदिन अपने घर बुलाते थे और उन्हें **धाना** खाने को देते थे। इन्द्र से कहते हैं - **दिवेदिवे धानाः सिद्धि,** प्रतिदिन घर में आओ और धाना खाओ। (३.३५.३) अग्नि की पूजा के लिए धाना का बहुत महत्त्व था। धाना देकर जो अग्नि को प्रसन्न करेगा, वह धान्य की बहुत बड़ी सम्पदा अर्जित करेगा। (६.१३.४) धान्य शब्द धाना से ही बना है। इन्द्र घर - घर सोम पीने आते हैं। सोम के साथ जो अन्य चीजें दी जाती है, उनमें धाना है। **धानावन्तं करम्भिणं अपूपवन्तं उक्थिनं** – ऐसा सोम पीने के लिए कवि इन्द्र को बुलाते हैं। (८.९१.२)

करम्भ संम्भवतः भुना हुआ मोटा अन्न था। उसके लिए कहा गया है कि वह शरीर को पुष्ट करे। (१.१८७.१०) खेती के मुख्य देवता पूषन् हैं। वह करम्भ के विशेष प्रेमी हैं। कहा जाए कि पूषन् करम्भाद् हैं, करम्भ खाते हैं, तो वह उनकी श्रेष्ठ स्तुति हैं। (६.५६.१) इन्द्र के लिए करम्भ और धाना तैयार किए गए हैं। (३.५२.७) इन्द्र सोम पीने के लिए बैठे हैं। लेकिन **अन्यः करम्भं इच्छति** – पूषन् करम्भ की इच्छा करते हैं। (६.५७.२) जब इन्द्र की बहुत सेवा करनी होती है, तब धाना करम्भ, अपूप, सोम, सब एकसाथ दिए जाते हैं। (३.५२.१;८.९१.२) लोग घी के साथ चपाती तैयार करके इन्द्र तथा अन्य देवताओं को खिलाते थे, उसे **अपूप** (पुआ) कहते थे। कवि इन्द्र से कहता है, मरुतों के साथ आओ- **अपूपं अद्धि,** अपूप खाओ। (३.५२.७)

अनाज से इन्द्र के लिए विशेष अन्न **पुरोडाश** तैयार किया जाता था। मैकडनल और कीथ के अनुसार यह यज्ञ की रोटी (**Sacrificial cake**) थी। उपासक यज्ञ में देवों को इसे अर्पित करते थे। कवि अग्नि से कहता है – सबेरे यज्ञ करेंगे, उसमें तुम पुरोडाश खाओ। (३.२८.१) फिर दोपहर में यज्ञ करेंगे, उसमें फिर पुरोडाश खाओ। (३.२८.४) सूर्यास्त होने पर पुनः यज्ञ करेंगे, उसमें भी पुरोडाश खाओ। (३.२८.६) इस तरह दिन में अनेक बार अग्नि को पुरोडाश खिलाया जाता था। पुरोडाश से अपना विशेष संबन्ध जोड़ते हुए कवि इन्द्र से कहता है : स्तुति सुनो और हमारा पुरोडाश खाओ।

(४.३२.१६) पुरोडाश का यह महत्त्व है कि जो इन्द्र को पुरोडाश देता है, उसी को इन्द्र पापों से बचाते हैं। (८.३१.२) पुरोडाश से इन्द्र की सेवा करने के बाद कवि यह फल चाहता है कि इन्द्र उसे हजारों पुरोडाश (सहस्रं पुरोडाशं) दें और सैकड़ों गायें भी दें। (८.७८.१) कवियों का निरामिष पुरोडाश - प्रेम स्पष्ट है।

आर्य जिस तरह का अन्न देवों को अर्पित करते थे, उसी तरह का अन्न स्वयं खाते थे। पुरोडाश, अपूप, धाना आदि के उल्लेखों से पता चलता है कि वे मुख्यतः कृषिजीवी समाज के लोग थे। खेती से जौ की उपज होती थी, उसी में दूध मिलाकर वे देवों को भेंट करते थे और स्वयं भी उसे ग्रहण करते थे। गायें पालते थे लेकिन गोपालन मुख्य धन्धा नहीं था। मुख्य धन्धा खेती था, गोपालन उसके अन्तर्गत था। **ध्यान देने की बात यह है कि बार-बार देवों को अनाज की, घी-दूध की चीजें भेंट की गई हैं। मांस का उल्लेख एक बार भी नहीं है।**

**ऋग्वेद** में **गो** शब्द का व्यवहार बहुत बार हुआ है। मोनियर विलियम्स ने बताया है कि गो शब्द के बहुत से अर्थ हैं। जल, किरण, सूर्य, नक्षत्र, घोड़ा, गाय आदि-आदि इस शब्द के बहुत से अर्थ ऋग्वेद में किए गए हैं। उसी से एक शब्द बनता है—**गविष्टि**, गाय की इच्छा करना अथवा गायों के लिए युद्ध करना। यह उसका मूल अर्थ था। जिस तरह क्षेत्र आदि शब्दों के अर्थ **ऋग्वेद** में बदल गए हैं, उसी तरह पशुपालक समाज का शब्द **गविष्टि** भी अपना पुराना अर्थ बहुत कुछ खो चुका है। मंत्रों के अनुवाद में अक्सर **गविष्टि** का अर्थ किया जाता है—गायों के लिए युद्ध। इस तरह का अर्थ बार-बार सामने आता है तो पाठक के मन में यह धारणा बैठ जाती है कि यह घुमन्तू समाज और इन लोगों का मुख्य धन्धा गाय पालना और दूसरों की गायें भगा लाना है। संदर्भ है—वृत्र से इन्द्र के युद्ध का। इन्द्र ने सूखे के दानव वृत्र को मारा, इससे जल मुक्त हुए। जलों को रहने के लिए स्थान चाहिए—**रोदसी अपः क्षयाय उरु चक्रिरे**, इन्द्र ने पृथ्वी, आकाश को जलों के निवास के लिए चौड़ा कर दिया। (१.३६.८) इस संदर्भ में **गविष्टिषु** शब्द आता है। निश्चय ही यहां इन्द्र गायों के लिए युद्ध नहीं करते; अधिक से अधिक जल और प्रकाश के लिए उन्होंने जो युद्ध किए हैं, उनका संदर्भ समझना चाहिए। मरुत्‌गण इन्द्र के सहायक हैं। वृत्र और शंबर को मारने में उन्होंने इन्द्र की सहायता की। मरुतों के लिए कवि कहता है—**त्वा गविष्टौ अनुमदन्ति**—वे गविष्टि में, युद्ध में, तुम्हें उत्साहित करते हैं। (३.४७.४) मरुतों के साथ इन्द्र कहीं गायों को हांकने नहीं गए। वे वृत्र और शंबर से युद्ध करते हैं, और युद्ध में जो प्राप्त होगा, वह जल है अथवा प्रकाश।

इसी तरह इन्द्र ने शुष्ण से युद्ध किया। शुष्ण का एक विशेषण है—**कुयव**। यव (जौ), कुयव खराब जौ। सूखा पड़ने से फसल चौपट हो जाए तो उसके लिए तो दानव जिम्मेदार है, उसे कुयव कहा गया। इन्द्र ने शुष्ण से युद्ध किया। **कुयवं गविष्टौ**—युद्ध में कुयव (शुष्ण) को मारा। (६.३१.३) यहां भी सूखे से फसल को बचाने का सवाल है। गविष्टि का यह अर्थ करना गलत होगा कि इन्द्र ने युद्ध इसलिए किया कि गायें हांक लाना था। एक मन्त्र में कवि इन्द्र से प्रार्थना करते हुए **गविष्टये** शब्द का

प्रयोग करता है—गायों की प्राप्ति के लिए। यहां युद्ध का अर्थ नहीं है। इसी मन्त्र में **गविष्टये** के साथ अश्वमिष्टये शब्द आया है। इसका अर्थ है कि अश्वों की प्राप्ति के लिए। (८.६१.७) कवि युद्ध की बात नहीं सोच रहा। इन्द्र की पूजा करके बहुत सम्पदा चाहता हैं। उसमें गायें हैं और घोड़े भी हैं। जैसे **अश्वमिष्टये** का अर्थ घोड़ों के लिए युद्ध नहीं है, वैसे ही **गविष्टये** का अर्थ गायों के लिए युद्ध नहीं है। एक मन्त्र में मुद्‌गलानी नाम की महिला का उल्लेख है। **रथीरभून्मुद्‌गलानी गविष्टौ** - युद्ध में मुद्‌गलानी रथ पर सवार हुई। (१०.१०२.२) यहां गविष्टौ का अर्थ ग्रिफिथ ने 'फाइट' किया है, जो ठीक है। आवश्यक नहीं कि मुद्‌गलानी गायों को लूटने के लिए रथ पर सवार होकर चली हों।

दामोदर धर्मानन्द कोसंबी ने अपनी पुस्तक **इंट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑव इंडियन हिस्ट्री** में आर्यों को घुमन्तू और बर्बर मानकर कल्पना की है कि भारत पर उनके आक्रमण से पहले हड़प्पा सभ्यता में लोग नदियों के बांध बनाकर खेती करते थे। तरीका उनकी समझ में यह था कि अस्थायी बांध बना देने से नदियों में जल भर जाता था और किनारे की जमीन पर फैल जाता था। उस उपजाऊ धरती पर वे बीज फैला देते थे और फसल काटते थे। आर्यों ने इस बांध व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया और इस तरह सारे प्रदेश की कृषि का नाश कर दिया। अब नगरों का आबाद बना रहना असंभव हो गया। जहां तक इस सर्वनाश का संबन्ध है, कोसंबी कहते हैं, उसमें तो किसी तरह का विवाद है ही नहीं। वह क्यों हुआ, इसका पता लगाना चाहिए। इन्द्र और वृत्र के युद्ध से वे हड़प्पा सभ्यता के इतिहास का संबंध जोड़ते हैं। (पृष्ठ ७०-७१) विडम्बना यह है कि जो लोग उतर भारत में खेती का विकास कर रहे थे, उन्हें कोसंबी ने उसका विनाशक मान लिया है। खेतों के जोतने, बोने, फसल काटने, देवों को जौ, पुए आदि की भेंट चढ़ाने की तरफ वह ध्यान देते तो खेती का महत्त्व आसानी से समझ में आ जाता। खेती के जितने प्रमाण ऋग्वेद में हैं, उनको उन्होंने एक तरफ हटा दिया है। हड़प्पा सभ्यता **ऋग्वेद** से पहले थी, आर्यों ने आकर उसका विनाश किया, यह आत्मगत कल्पना उन्होंने तथ्यों पर आरोपित कर दी है।

आर्य जन खेती के लिए वर्षा पर निर्भर थे। इसके अलावा वे कुओं से भी खेत सींचते थे, नदियों की सहायता लेते थे। एक जगह **खनित्रिमा** शब्द आया है। (७.४९.२) मैकडनल और कीथ ने लिखा है कि यह शब्द अपाः का विशेषण है और स्पष्ट रूप से वह जल की नालियों के लिए प्रयुक्त हुआ है जिनका उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता था। (**आर्टिफिशल वाटर चैनल यूज्ड फॉर इरीगेशन**) (**वेदिक इंडेक्स**, खंड १, पृष्ठ २१६)

आर्यजन सिंचाई का प्रबन्ध करके खेती का विकास कर रहे थे। नदियों के बांध तोड़ना और खेती को बरबाद कर देना उनके लिए आवश्यक न था। वास्तव में जिन अवरोधों को तोड़ने की बात है, वे अधिकतर आकाश में हैं या पर्वतों में हैं। वृत्र इन अवरोधों का मुख्य रूप है। इन्द्र उसका नाश करके जलों को मुक्त करते हैं। ये जल मनुष्य की अन्य आवश्यकताओं के अलावा खेती के काम आते हैं। अंगिरा से प्रशंसित होकर इन्द्र ने **वलं भिनत्,** वल को तोड़ दिया। (२.१५.८) बल का अर्थ है घेरने वाला। वृत्र के समान वह जलों को रोकता है। इन्द्र ने उसमें छेद कर दिया और जो गायें अर्थात् जल

भीतर बन्द थे, वे प्रवाहित हो गए। मैकडनल ने वैदिक देवतन्त्र पर अपनी पुस्तक में बल के मेघ अर्थ की ओर संकेत किया है। नदियों के बांध से उसका कोई संबंध नहीं है। जिस मन्त्र में बल को तोड़ने की बात है, उसी में **कृत्रिमाणि रोधांसि** का उल्लेख है। वे बाड़े उसी दानव द्वारा बनाए गए हैं और इनका उद्देश्य बादल के जल को रोक रखना है। इन्द्र इन बांधों को तोड़े देते हैं और इससे जल धरती पर गिरता है। एक अन्य मन्त्र से **रोधांसि** शब्द आया है। सातवलेकर ने इसका अनुवाद पहाड़ किया है और ग्रिफिथ ने उसी से मिलता-जुलता the precipices. ऊँची चट्टानें किया है। इन्द्र का जन्म होने पर धरती, पहाड़, आकाश, नदियां, सब कांपने लगे। आगे मन्त्र में कहा गया है, वायु (**वाताः**) मनुष्यों के समान अंतरिक्ष में शब्द करने लगे। (४.२२.४) अंतरिक्ष के उल्लेख से स्पष्ट हो जाता है कि इन्द्र के जन्म लेने से जो पहाड़ कांपे, वे आकाश में हैं उनका अर्थ बादल है।

ऋग्वेद में दो बार **कुल्या** शब्द आया है। मैकडनल और कीथ ने **वेदिक इंडेक्स** में मुइर का मत उद्धृत किया है जिसके अनुसार कुल्या संभवतः मनुष्य द्वारा बनाए गए जलमार्ग थे जो किसी जलाशय तक पहुंचते थे। (खंड १, पृष्ठ १७३) मनुष्य ये जलमार्ग बनाते थे तो अवश्य ही उनका संबन्ध सिंचाई से रहा होगा। **अवत** शब्द **ऋग्वेद** में कई बार आया है। मैकडनल और कीथ के अनुसार इसका अर्थ कुआं है। **अवत** जल से भरे होते थे, इनसे एक चक्र द्वारा पानी निकाला जाता था। चक्र में **वरत्रा** रस्सी बांधी जाती थी और नीचे उसमें कोष, डोल या पुर जैसी चीज रहती थी। उससे पानी भरकर ऊपर लाया जाता था। मैकडनल और कीथ कहते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि कभी-कभी ये कुंए सिंचाई के लिए इस्तेमाल होते थे और उनसे निकाला हुआ जल चौड़ी सरणियों से होकर प्रवाहित होता था। (**सूर्मी सुशिरा**) (८.६९.१२) (**वेदिक इंडेक्स**, खंड १, पृष्ठ ४०) वैदिक जन खेती की सिंचाई का ध्यान रखते थे, इसके पर्याप्त संकेत ऋग्वेद में हैं।

जिस सोते से पानी अपने आप निकलता है, उसे **उत्स** कहते हैं। **उत्सं अखनतः** (१०.१०१.११), उत्स से जल मिलता है, उसे खोदने की जरूरत नहीं है। किन्तु अवत खोदा जाता है, **खाताः अवताः** (४. ५०.३) बृहस्पति के लिए कुएं खोदे गए। कुआं खोदा जाएगा तो उसके लिए कोई उपकरण भी चाहिए। **खनित्रैः खनिमानः**, अगस्त्य के लिए कहा गया है कि वह खनित्र से, कुदाली या फावड़ा जैसी चीज से, जमीन खोद रहे थे। (१.१७९.६)

कृषि का विकास मुख्य है, पशुपालन उसके अंतर्गत है- इसका बहुत अच्छा निदर्शन दसवें मंडल के एक सूक्त में है। कवि कहता है – "हे मित्रो! हलों को जोतो। जुओं को विस्तृत करो। उतम तैयार किए क्षेत्र में यहां बीज को बोओ। देवों पर श्रद्धा रखने वाले बुद्धिमान विद्वान लोग सुख प्राप्त करने के लिए हल आदि को जोतते हैं... हे मित्रो, गौओं, पशुओं के पानी पीने के बहुत स्थान बनाओ। रज्जुओं को परस्पर जोड़ो। हम उत्तम झरने से जलयुक्त, उत्तम रीति से भूमि-खेत सींचने में समर्थ और अक्षय कूप से जल लेकर सींचे। उत्तम जलपान के स्थान से सुसज्जित सुंदर रज्जु से युक्त, उत्तम रीति

से सेवन करने योग्य, जल से पूर्ण, और अक्षय कूप से मैं सिंचाई करता हूं। अश्वों-बैलों को घास-जल आदि से संतुष्ट करो। खेत में रखे हुए हितकारक अन्न-धान्य को प्राप्त करो। सुखपूर्वक, सरलता से धान्य ले जाने वाले सुन्दर रथ को अवश्य बनाओ। मनुष्यों के पीने योग्य, कवच के समान आवरणयुक्त, पत्थर का बनाया हुआ चक्र से युक्त, काष्ठ के बने जलपात्र से युक्त, जलाधार कूप को प्राप्त कर उससे सींचो। गोष्ठ-गोशालाएं अच्छी प्रकार बनाओ। वही निश्चय से तुम्हारे लिए, मनुष्यों आदि के जलपान के लिए उपयुक्त हैं।'' (१०.१०१.३-८) इस सूक्त में मुख्य बल खेती करने, हल चलाने, बीज बोने, सिंचाई करने आदि पर है। इसके साथ गौशालाएं बनाने, कुओं से पानी निकालने, पशुओं के जल पीने की व्यवस्था करने आदि का उल्लेख है। पांचवें मन्त्र में **अवतं सिंचामहे**—ये शब्द आए हैं। **अवतम्** माने कुआं- कुएं से सिंचाई करना है। अगले (छठे) मन्त्र में **अक्षितं अवतं सिञ्चे,** ऐसे कुएं से सिंचाई करना है जिसमें जल बराबर भरा रहता है। फिर सातवें मन्त्र में **अश्मचक्रं द्रोण आवाहं अवतं सिञ्चत** – अवत के साथ अश्मचक्र और द्रोण का उल्लेख भी है। पत्थर की गरारी बनाकर उससे जल खींचते थे। जल भरने के लिए लकड़ी के बड़े पात्र थे, वही द्रोण हैं। कुएं में उन्हें भरकर ऊपर लाया जाता था। कीथ और मैकडनल ने चक्र द्वारा सिंचाई की व्यवस्था करने की जो बात कही है, उसका आधार यही मन्त्र है।

गायों और बैलों के साथ वैदिक - जन भेंड़े और बकरियां भी पालते थे, यह बात ध्यान देने योग्य है। जिस क्षेत्र में वे रहते हैं, वह कोसों तक फैला मैदान नहीं है। वह पर्वतों के पास उपत्यकाओं का क्षेत्र है। पहाड़ी स्थान है, पत्थरों की भरमार है। पानी निकालने के लिए अश्मचक्र बनाना बहुत स्वाभाविक है। कुआं खोदना बहुत आसान न रहा होगा। **ब्रह्मणस्पति** यानि बृहस्पति ने कुआं खोदा। उसके मुंह पर पत्थर रखा हुआ था। **अश्म आस्यं अवतं ब्रह्मणस्पतिः ओजसा अतृणत्।** उसके मुंह पर पत्थर रखा हुआ था, इसका आशय यह हो सकता है कि पहाड़ी स्थान से पत्थर हटाकर कुआं खोदना कठिन कार्य था। यह कार्य बृहस्पति ने सम्पन्न किया, इसलिए उन्हें इस सूक्त में याद किया गया। (२.२४.४) **अतृणत्** क्रिया का प्रयोग एक अन्य संदर्भ में भी किया गया है। इन्द्र के लिए कहा गया है कि उन्होंने वज्र से नदियों के मार्ग बनाए। **वज्रेण खानि अतृणत् नदीनाम्,** इन्द्र ने नदियों के मार्ग वज्र से खोदकर बनाए, इससे पता चलता है कि वज्र, तेज धार वाला उपकरण, कवियों की कल्पना में था। इसी वज्र से इन्द्र बार-बार चट्टानों, पर्वतों, दुर्गों आदि को तोड़ते हैं।

# एक महान कर्मयोगी

**श्रीगुरुपद भौमिक**

माननीय ठाकुर रामसिंह जी एक महान कर्मयोगी, कुशल-संगठक, दृढ़ चेता, जितेन्द्रिय एवं प्रचण्ड आत्मशक्ति-सम्पन्न व्यक्ति थे। ये सभी विशेषण उनके लिए केवल अलंकार न होकर, अक्षरशः सत्य थे। संघ-प्रार्थना में प्रार्थित सारे गुण मा. रामसिंह जी के व्यक्तित्व में प्रकट हुए थे। इसी कारण उनके सान्निध्य में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति एवं स्वयंसेवक पर उनके व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पढ़ता था।

असम में संघकार्य सन् १९४८ में संघ पर प्रतिबन्ध लगने के कुछ दिन पूर्व आरम्भ हुआ। प्रतिबन्ध उठ जाने के पश्चात मा. रामसिंह जी को प्रान्त प्रचारक का दायित्व देकर असम में भेजा गया। तत्कालीन असम में संघ-कार्य की दृष्टि से उत्तर-पूर्वांचल के सातों राज्यों के क्षेत्र सम्मिलित थे। तत्कालीन अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थिति में ठा. रामसिंह जी की विजिगीषु मनोवृत्ति एवं कठोर परिश्रम के कारण ही, उस समय उत्तर पूर्वांचल में संघकार्य की प्रतिष्ठा सम्भव हो पाई थी।

स्वयं के आकर्षक व्यक्तित्व एवं विद्वत्ता की सहायता से मा. ठा. रामसिंह जी इस क्षेत्र के अनेक शिक्षाविदों, भाषाविदों, इतिहासज्ञों एवं गुणवान व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करने में सफल हुए एवं उन लोगों को संघकार्य तथा विविध-क्षेत्रों में क्रियाशील कर पाये। इस शृंखला में पंडित तीर्थनाथ शर्मा, पंडित गिरिधर शर्मा, श्री सुरेन्दनाथ शर्मा, डॉ. सूर्यकुमार भूयां, श्री राधिका मोहन गोस्वामी, श्री मीनधर बरठाकुर जैसे अनेकों नाम उल्लेखनीय हैं।

व्यक्तिगत रूप से मुझे बचपन से लेकर प्रचारक जीवन तक सदा ही मा. ठाकुर जी का सान्निध्य एवं दिशा-दर्शन प्राप्त करने का सुयोग मिला। विविध कार्यक्रम एवं घटनाओं के माध्यम से उनके गुणों एवं चरित्रिक विशेषताओं का परिचय मिला जिनमें से उल्लेखनीय है– वीर मनोवृत्ति, निश्चित कार्यक्रम के निर्वाह के प्रति आग्रह, स्वयं के प्रति कठोरता एवं देर रात्रि तक अध्ययन एवं पत्र-लेखन। प्रातः ४ बजे से पूर्व ही उठकर किसी एक शाखा में समय से पूर्व ही उपस्थित होने के वे अभ्यस्त थे। समय एवं नियम पालन के वे बहुत आग्रही थे। जिस प्रकार का मनोबल था, उसी प्रकार का शारीरिक सामर्थ्य भी था। मैं जब बालक स्वयंसेवक था, तब हमारे तिनसुकिया में मा. ठाकुर जी के पहुंचने पर प्रायः ही तरुण स्वयंसेवकों को लेकर न-पखुरी (आहोम राजाओं के समय का विशाल सरोवर) की चारों भुजाओं को तैर कर पार करने का कार्यक्रम होता था।

सन् १९६०-६१ की बात है। एक दिन डिब्रुगढ़ के संघ-कार्यालय में शाम के समय कुछ उग्र प्रकृति के लड़कों ने आकर शाखा बन्द करने की धमकी दी, किन्तु मा. रामसिंह जी की तेजस्वितापूर्ण बातें एवं युक्तियां को सुनकर वे निःस्तब्ध हो गये एवं अन्त में क्षमा भी मांग ली।

एकबार तत्कालीन संघ शिक्षा वर्ग में मा. ठाकुर जी कुछ स्वयंसेवकों के साथ मिलकर कुठार से लकड़ियां फाड़ रहे थे। तब उनकी ओर देखकर मा. एकनाथ जी ने कहा था। हमारे ठाकुर साहब फौलाद से बने हैं।

एक बार तिनसुकिया में शीत-शिविर के लिए शहर से कुछ दूर बड़े मैदान में तम्बू गाड़े जा रहे थे। मैं तब बालक था। रात का समय था। मुझे घर से खाना लाने को कहा गया। मेरे घर और एक मैदान के बीच कुछ जंगल जैसा था। तब मैं थोड़ी भीरु प्रकृति का था। मा. ठाकुर जी ने मेरे हाथों में एक दराट थमा दिया एवं कहा – 'जाओ, डरना मत, कोई मिले तो काट डालना।' और मैं चल पड़ा। खाना लेकर ही लौटा। सन् १९६८ में संघ शिक्षा वर्ग के पूर्व मा. रामसिंह जी मोटरसाइकिल पर प्रवास कर रहे थे। तब दुर्घटनाग्रस्त होने के कारण पांवों में मल्टीपल फ्रैक्चर होने के कारण उन्हें गुवाहाटी के 'महेन्द्रमोहन चौधरी अस्तपाल' (सरकारी) में बहुत दिन रहना पड़ा था। उस समय उनसे मिलने के लिए जो स्वयंसेवक एवं अभिभावक आते थे, उनसे बातें करते हुए, प्रेरणा जगाते हुए, सन् १९६८ के संघ शिक्षा वर्ग में गुवाहाटी से सर्वाधिक शिक्षार्थी भेजे। मैं तब गुवाहाटी विश्वविद्यालय में पढ़ रहा था। मैं और मेरे साथ पढ़ने वाले ५-६ कार्यकर्त्ताओं को प्रचारक के रूप में निकलने के लिए उन्होनें आग्रह किया था। मा. ठाकुर जी के आग्रह एवं प्रेरणा के कारण ही १९६८ सन् में, मैं और श्री नव बरुवा 'प्रचारक' निकले। मेरा कार्यक्षेत्र दक्षिण कामरूम जिला था। तब वहां गुवाहाटी विश्वविद्यालय की शाखा छोड़कर अन्य शाखा नहीं थी। मैंने मा. रामसिंह जी को पूछा, 'किस प्रकार काम आरम्भ किया जाए।' उन्होंने जबाब दिया, ''Go for tilling the grounds and sowing the seeds.''

मा. रामसिंह जी छात्र-जीवन में एक कर्तृत्ववान एवं मेधावी छात्र थे। लाहौर विश्वविद्यालय से इतिहास विषय में उच्चस्तर श्रेणी में स्नातकोत्तर डिग्री पाकर अपने सम्पूर्ण जीवन को राष्ट्रसेवा में उत्सर्गित करते हुए दो दशक से अधिक समय अर्थात् सम्पूर्ण यौवन-काल असम तथा उत्तर पूर्वांचल में कार्यरत रहते हुए बिताया। सन् १९९१-९२ में उनके कार्यक्षेत्र के परिवर्तित होने के बाद भी विभिन्न समय में विशेष दायित्व लेकर असम में आकर इस क्षेत्र के लोगों के साथ भावों का आदान-प्रदान करते हुए प्रेरणा देते रहे थे। मा. रामसिंह जी ने देश के सुदूर पश्चिमी भाग में तत्कालीन पंजाब प्रान्त के एक छोटे से गांव में जन्म लेकर भी सुदूर उत्तरपूर्वांचल में लम्बे समय रह कर, यहां की भाषा, संस्कृति एवं सभी प्रकार के जनसमूहों के साथ एकात्मक होते हुए 'हिन्दू समाज - एक जन एक राष्ट्र', भावधारा को स्वयं के जीवन के द्वारा उदाहरण के रूप में स्थापित किया।

मा. ठाकुर रामसिंह जी का जीवन-चरित्र सदा ही हमलोगों के लिए एवं आगामी पीढ़ी के लिए एक प्रेरणा का स्रोत रहेगा।